योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई 283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष:37, अंक 6
सितम्बर 2024

प्रकाशन तिथि: 01-09-2024
मूल्य-एक प्रति:25/-, वार्षिक :250/-
आजीवन (10 वर्ष) 1800/-

अमृतकण

आत्मानमेव मन्येत कर्तारं सुखदुःखयो ।
तस्माच्छ्रेयस्करं मार्गं प्रतिपद्यते नो त्रसेत् ।।

सुख-दुख का कर्ता व्यक्ति स्वंय होता है, ऐसा समझकर कल्याणकारी मार्ग का ही अवलम्बन करना चाहिए। फिर भयभीत होने की कोई बात नहीं।

● ● ●

मृत्योर्बिभेषि किं मूढ भीतं मुञ्चति किं यमः।
अजातं नैव गृह्णाति कुरु यत्नमजन्मनि।।

अरे मूर्ख ! क्या तुम मृत्यु से डर रहे हो? डरे हुए का क्या मृत्यु छोड़ देती है? ऐसा समझ रहे हो तो यह तुम्हारी मूर्खता है। मृत्यु तो सबको काल का ग्रास बना देती है। वह तो जो जन्म ही नहीं लेता, उसी को नही पकड़ती हैं। इसलिए ऐसा प्रयत्न करो, जिससे पुनः जन्म ही न लेना पड़े।

● ● ●

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ।।

अर्थात् न तो आत्मा की कभी उत्पत्ति होती है और न कहीं यह अवरुद्ध किया जा सकता है। न आत्मा कभी बन्धन में पड़ता है और न ही कभी इसे साधना करने की आवश्यकता पड़ती है। न कभी इसे मोक्ष के लिए प्रयत्न करना पड़ता है और न कभी यह मुक्त ही होता है, क्योंकि यह पहले से ही मुक्त है। वास्तव में यही परमार्थिक स्थिति है।

● ● ●

पुत्रमित्रकलत्रादि सुखं जन्मनि जन्मनि।
मर्त्यत्वं पुरुषत्वं च विवेकश्च न लभ्यते ।।

पुत्र-मित्र-कलत्र आदि का सुख जन्म-जन्म में प्राप्त हो सकता है, परन्तु मनुषत्व, पुरुषत्व और विवेक की प्राप्ति नहीं होती।

● ● ●

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तो का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थात् शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप का योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली "सिद्धयोग" नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 57 | सितम्बर 2024 | अंक 6

धीरो हर्ष शोकौ जहाति

तं दुर्दर्शं गूढ मनु प्रविष्टं,
गुहाहित गह्वरेष्ठं पुराणम् ।
अध्यात्म योगधिगमेन देवं,
मत्वा धीरो हर्ष शोकौ जहाति।

अर्थात्- जो योग माया के पर्दे में छिपा हुआ सर्वव्यापी, सब के हृदय रूप गुहा में स्थित संसार रूप गहन बन में रहने वाला सनातन है। ऐसे उस कठिनता से देखे जाने वाले परमात्मा देव को शुद्ध बुद्धि युक्त धीर साधक अध्यात्म योग की प्राप्ति के द्वारा समझकर हर्ष और शोक को त्याग देता है।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spirtual values

संस्थापकः

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादकः

आचार्य (डा0) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादकः

डा0 विजय सिंह एवं दिनेश शर्मा

लेख की सूची

प्राणायाम का अधिकारी (योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज)	3
योग साधना का आधार– युक्त आहार बिहार (ब्र0 श्री दासलाल)	7
श्रीमद् भागवत में योग–चर्चा (डा0 विजय सिंह)	9
लीलाधारी की लीलायें (जगदीश राय बंसल "अधम")	11
श्रद्धा और विश्वास (अन्तूराम यादव)	14
शक्तिपात और गुरू दीक्षा (श्री कुन्दनलाल सचदेव)	18
योग के आधार (श्री रामदेव झा विनोद)	22
दिशाहीन नारियों का उद्धार (श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी)	27
निष्काम कर्मयोग (डा0 श्री रमेशचन्द्र जिंदल)	31
बुद्ध के उपदेश (श्री वियोगी हरि)	35

हमारा विशेष लेख

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

प्राणायम का अधिकारी एवं उसकी साधना स्थली

प्राणायम हठयोग का एक अंग है। अतः प्राणायाम के साधकारों को हठोपयोगी नियमों का पालन करना चाहिए। साथ ही प्राणायम के अभ्यासी को अत्यन्त उत्साही, वीर्यवान, संयमी एवं एकान्तसेवी होना चाहिए। शास्त्रों में कहा गया है।

हठविद्या परं गोप्या योगिना सिद्धिमिच्छता ।
भवेद्वीर्यवती गुप्ता निर्वीर्या तु प्रकाशिता ।।

जिस प्रकार से योग-साधक अपने संयम नियमादि का पूर्णरूपेन पालन करता है, इसी प्रकार हठ विद्या के अभ्यासी को अपनी साधना गुप्त रखना चाहिए। गुप्त रूप से की हुई साधना बल की दात्री होती है। जो लोग इस विद्या को बाजार में प्रदर्शित करते रहते हैं और इसे व्यापार का साधन बना चुके हैं, वे इस विद्या के अधिकारी नहीं हैं। क्योंकि उनका उद्देश्य उदर पालन मात्र ही होता है, उनको किसी प्रकार का वैराग्य नहीं है। श्री याज्ञवल्क्य मुनि अपनी स्मृति में लिखते हैं-

विध्युक्त कर्म संयुक्त, काम संकल्प वर्जित।
यमैश्चनियमैर्युक्तः, सर्व संग विवर्जित ।।
कृतविद्यो जितक्रोधः, सत्य धर्म परायणः ।
गुरु-शुश्रुषणरतः, पितृमातृपरायणः ।।
स्वाश्रमस्थः सदाचारी विद्वभिद्रश्व सुशिक्षितः ।।

विधियुक्त कर्म करने वाला, काम संकल्प से रहित, यम-नियमों का पालन करने वाला, सब प्रकार के संग दोषों से दूर रहने वाला, विद्वान, क्रोधरहित, सत्य धर्म परायण, श्री गुरुचरणबिन्द का सेवक एवं माता-पिता का सेवक, ब्रह्मचर्य गृहस्थ आदि किसी भी आश्रम का सेवन करने वाला तथा जिसने विद्वानों से शिक्षा प्राप्त की हो ऐसा व्यक्ति हठ विद्या का अधिकार होता है।

हठयोगी की साधना-स्थली--

हठयोगी प्रदीपिका के रचियता योगी आत्माराम ने हठयोग साधन के लिए स्थान का निर्देश इस प्रकार किया है:-

सुराज्ये धार्मिके देशे,
सुभिक्षे निरूपद्रवे ।
धनु: प्रमाण पर्यन्तम्,
शिलाग्नि जल वर्जिते ।।
एकान्ते मठिका मध्ये,
स्थातव्यं हठयोगिना ।।

हठयोगी को ऐसे देश में अपने हठाभ्यास का स्थान बनाना चाहिए जहाँ के शासक धर्म-परागण हो एवं वह देश सब प्रकार से धन-धान्य से पूर्ण हो, जहाँ किसी प्रकार के उपद्रव न होते हों, जहाँ पर साधु अपनी भिक्षावृत्ति सुविधा से कर सके, जहाँ दीर्घ-काल तक साधना की जा सके, जो स्थान तुषारपात, जल एवं अग्नि से वर्जित हो ऐसे स्थान पर चार हाथ चौकोर भूमि को शुद्ध करके उसमें हठाभ्यास के उपयुक्त मठको बनाये और उसमें निवास करे। दृढ़तापूर्व अपना अभ्यास करता चला जाय।

योगी का साधन मठ में कैसे करनी चाहिए इसका भी वर्णन श्री योगी आत्माराम ने हठयोग प्रदीपिका में इस प्रकार किया है:

अल्पद्वारमरंध्रगर्तविवरं,
नात्युच्चोचायतम् ।
सम्यग्गोमय सांद्रलिप्तममलं
विश्शेष जन्तृज्झितम् ।।
बाह्ये मडंप वेदि कूप रुचिरं
प्राकार संवेष्टितम् ।
प्रोक्तं योगमठस्य लक्षणमिदं
सिद्ध हंठाभ्यासिभि: ।।

मठ का मुख्य द्वार बहुत छोटा-सा हो और उसमें किसी प्रकार की खिड़की आदि नहीं होनी चाहिए। क्योंकि प्राणयाम करने वाले योगी का शरीर अग्नि में तपाए गए सोना चाँदी आदि धातुओं के समान बहुत ही तरल एवं निर्मल रहता है, कदाचित खिड़की, जंगले आदि रखने से एकाएक वायु लगने ये योगी के शरीर में पक्षाघात आदि हो सकता है। अत: हठाभ्यासोपयोगी योगी को मठ में किसी भी प्रकार के छिद्र नहीं रखने चाहिए। ताकि किसी भी प्रकार के उपद्रव का भय न रहे। उस मठ में किसी के गड्ढे विवर आदि भी नहीं होने चाहिए। हठाभ्यास की भूमि बिल्कुल समतल होना ही उपयुक्त है। घरों के अन्दर जिस प्रकार चूहे अपना बिल खोद लिया करते हैं, इस प्रकार के विवर हठमठ में अन्तराय के जनक हैं। वह मठ न तो बहुत ऊँचा हो क्योंकि ऊँचा होगा तो चढ़ने में कष्ट रहेगा और नीचा हो। हठयोगी का यह स्थान गोबर से भली प्रकार लिपा हुआ और छोटे जन्तुओं मच्छर, खटमल आदि से रहित होना चाहिए। मठ के बाहर चारों ओर दीवाल रहनी चाहिये और दीवाल के अन्तर्गत बेदी मण्डप तथा कुआँ आदि होने चाहिए। इस प्रकार मठ का वर्णन हठाभ्यासी सिद्धों ने अपने ग्रन्थों में किया है। नन्दिकेश्वर पुराण में हठमठ का वर्णन इस प्रकार किया गया है:-

मन्दिरं रम्य विन्यासं,
मनोज्ञं ग्रन्थ वासितम् ।
धूपामोदादि सुरभि,
कुसुमोत्करमण्डितम् ।।
मुनि तीर्थ नदी वृक्ष,
पद्मिनी शैल शैभितम्।
चित्र कर्म निबद्ध च,
मित्र भेद विचिलितम् ।।
कुर्याद्योगमृहं धीमान्सुरम्यं,
शुभ वर्त्मना ।
दृष्ट्वाचित्रगतांश्छान्ताम्मुनीन्
याति मनः शमम् ।।
सिद्धान्तान्दृष्ट्वा चित्रगता-
न्मतिरभ्युवते भवेत् ।।

योग मन्दिर की रचना अत्यन्त रमणीय एवं मनोहारी होनी चाहिए। उसमें दिव्य सुगन्धि का हर समय वास होना चाहिए। योग-मण्डल पर सुगन्धित पुष्पों की लतायें हर समय फैली हुई हों, जिससे दिव्य सुगन्ध हर समय आती रहे। वह भूमि तपस्वियों एवं मुनियों से आवासित हो तथा वहाँ गंगा आदि कोई पवित्र नदी बहती हो अथवा तीर्थ स्थली हो। वहाँ छोटे-छोटे तालाबों में या नदी के प्रान्त में कमलिनी खिली हुई हो, बड़े सुन्दर हरे-भरे वृक्ष हों। योग-मठ में बड़े सुन्दर-सुन्दर चित्र बने हुए हों, उन चित्रों में शान्त मुनियों, तपस्वियों एवं सिद्धों के चित्र होने चाहिए, क्योंकि सिद्ध मुनियों के चित्रों को देखने से साधक के मन में एक उत्साह पैदा होता है। उस योग-मण्डप में किसी प्रकार का कोई अशुभ चित्र न हो। वह मठ सब प्रकार की मंगलमयी भावनाओं से पूर्ण हो तथा उसमें सुन्दर-सुन्दर वेद मन्त्र एवं चौपाइयाँ लिखी हुई हों, जिसको पढ़कर साधक का उत्साह बढ़े।

एवं विधे मठे स्थित्वा,
सर्वचिन्ताविवर्जितः।
गुरूपदिष्टमार्गेण,
योगमेव समभ्यसेत ।।

इस प्रकार के मठ में बैठकर सब प्रकार की चिन्ताओं से रहित होकर गुरूपदिष्ट मार्ग से योगाभ्यास करे। ऐसा करने से योगी सिद्धभाजन बन जाता है।

हठाचार्यों ने उपरोक्त प्रकार योग-स्थली का वर्णन करने के साथ-साथ कुछ आवश्यक पालनीय नियमों का निर्देश किया है जिनका पालन करने से साधक जल्दी ही अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया करता है जगदात्मा अखिल लोकपावन श्रीकृष्णचन्द्र ने गीता में अपने मुखारबिन्द से कहा है-

युक्ताहारविहारस्य,
युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य,
योगो भवति दुःखहा ।।

जिस प्रकार का आहार एवं विहायुक्त है, जिसकी हर चेष्टा ठीक है, जो ठीक समय पर सोता है और समय पर जाग जाता है ऐसे व्यक्ति की योग-साधना उसके सब प्रकार के दुःख द्वन्द्व का नाश कर देती है, जिनसे अपने आहार-विहार पर पूरी तरह नियन्त्रण कर लिया है, उनकी योग-सिद्धि में कोई सन्देह नहीं है। इस सम्बन्ध में योगाचार्यों का कथन है-

ब्रह्मचारी मिताहारी
त्यागी योगपरायणः ।
अब्दादूर्ध्व भवेत्सिद्धो
नात्र कार्या विचारणा ।।

जो साधक ब्रह्मचारी, मिताहारी, त्यागी एवं योग-परायण है, वह एक वर्ष में ही सिद्ध हो जाता है। इसमें कोई भी शंका की बात नहीं है।

मिताहार का लक्षण-

सुस्निग्ध मधुराहारश्च
तुर्थांश विवर्जित ।
भुज्यते शिवंसप्रीत्यै
मिताहारः स उच्यते ।।

हमारे आचार्यों ने उदर (पेट) के चार भाग माने हैं। साधक को चाहिए कि उनमें से दो भागों को सुस्निग्ध एवं मधुर आहार से पूरित करे, एक भाग को जल से और चौथा भाग प्राणवायु की गति के लिए खाली रहने दे। जो लोग इस निसम को ध्यान में रखते हुए आहार करते हैं, वे ही मिताहारी कहलाते हैं।

योगी का आहार-

पुष्टं सुमधुरं स्निग्धं,
गव्यं धातु प्रपोषण् ।
मनोभिलषितं योग्यं
योगीभोजनमाचरेत् ।।

पुष्टिकारक, मधुर, चिकना, गो-दुग्ध-घृतादि से युक्त, धातुओं की पुष्टि करने वाला एवं मन को अच्छा लगने वाला भोजन सात्विक आहार कहलाता है। योगी को इसी प्रकार के सात्विक आहार का सेवन करना चाहिए।

गीता में सात्विक आहार का लक्षण इस प्रकार किया गया है-

आयुसत्वबलारोग्य-
सुखप्रीति विवर्धनः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा
ह्या आहार सात्विक प्रियाः ।।

जो आहार आयुवर्द्धक हों, बुद्धि, बल एवं आरोग्य को बढ़ाने वाले हों, जो शरीर में अपना स्थाई प्रभाव बनाये रखते हों। इस प्रकार के सुमधुर एवं चिकने पदार्थ सात्विक आहार कहलाते हैं। ये आहार सतोगुणी व्यक्ति को स्वभाव से ही प्यारे होते हैं।

इस प्रकार युक्त आहर-विहार वाले साधक बहुत जल्दी सिद्धि को पा जाया करते हैं।

जो भाग्यवान साधक अपनी इन्द्रियों के ऊपर जय प्राप्त कर लेते हैं, वे संसार में अजर अमर हो जाते है।

पाठकों से निवेदन

'सिद्धयोग' का यह अंक भी पाठकों की सेवा में विलम्ब से पहुँच रहा है। इसका कारण विद्युत सप्लाई का अभाव तथा मशीनों की मरम्मत का होना ही कहा जा सकता है। आगे 'सिद्धयोग' नियत समय पर पाठकों की सेवा में पहुंच सके, इसका पूरा ध्यान रखा जा रहा है।

योग-साधना का आधार

युक्त आहार-विहार

☆ ब्र० श्री दासलाल ☆

श्रीमद्भगवद्गीता के छठे अध्याय में अखिलात्मा आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी ने योग के लिए आहार-विहार का संकेत दिया है। उनके शब्दों में-

नात्यश्नवस्तु योगोऽस्ति,
न चैकान्तमनश्तः।
न चाति स्वप्नशीलस्य,
नाग्रतो नैव चार्जुन।।
युक्तस्वप्नावबोधस्य,
योगो भवति युक्त दुःखहा।।
(गीता ६/१६-१७)

अर्थात् अत्यधिक खाने वाले का तथा बिल्कुल न खाने वाले का, बहुत सोने वाले का तथा जागते रहने वाले का योग-सिद्ध नहीं होता है। परन्तु जिसके आहार और विहार युक्त चेष्टायें हैं तथा जो सोने और जागने में युक्त हैं अर्थात् ठीक समय पर सोता-जागता है, इसके लिए योग समस्त दुःखों को हरने वाला होता है।

अन्न का सृष्टि पालन में बहुत महत्व है, महर्षि चरक के अनुसार

प्राणः प्राणभृतामन्नमन्नं,
लोकोऽभिधावति।
वर्ण प्रसादः सौस्वर्य,
जीवितं प्रतिभा सुखम्।
तृष्टिः पुष्टिर्बलं मेधा,
सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम्।।

अर्थात् देवधारियों का प्राण अन्न ही है अन्न से ही लोक चलता है। वर्ण प्रसाद, सौस्वर्य, जीवन, प्रतिभा, सुखं, तृष्टि, पुष्टि, बल, मेधा ये सब अन्न पर प्रतिष्ठित हैं। आचार्य सुश्रुत ने भी ऐसी ही बात कही है-

आहारः प्राणिनः सद्यो,
बलकृद देवधारकः।
आयुस्तेजः समुत्साह-
स्मृत्यओऽग्नि विविर्धनः।।

अर्थात् आहार प्राणियों के लिए सद्य बल-प्रद, देवधारक, आयु, तेज, उत्साह, ओज और अग्नि को बढ़ाने वाला होता है।

उपरोक्त वचनो से सिद्ध है कि मानव के लिए आहार की कितनी महत्ता है। उचित आहार आरोग्य के लिए आवश्यक है तथा "धर्मार्थकाम मोक्षाणां आरोग्यं मूलमुत्तमम्" के अनुसार धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष का आधार आरोग्य है। युक्ताहार का तात्पर्य है योग साधना के लिए उचित व आवश्यक आहार।

योग-साधक को हित भुक्, मित भुक् तथा

आधे पेट को अन्न से भरले, तीसरे हिस्से को जल से भरे तथा चौथे भाग को वायु-मथण के लिए छोड़ दें।

साधक को अधिक उपवास भी नहीं रखने चाहिये, उपवास से वायु कुपित होती है, जठराग्नि मन्द पड़ जाती है। अतः योगी को उपवास भी नहीं करना चाहिए।

युक्त-बिहार-

युक्त आहार के पश्चात् विहार का भी साधना में महत्व है। बिहार से तात्पर्य है कि समस्त मानसिक वृत्तियाँ, आचरण तथा शारीरिक चेष्टाओं से है। साधक को समय पर सोना तथा समय पर उठना चाहिए। अधिक सोने वालों को योग-सिद्ध नहीं होता यह बताया गया है-'ब्राह्मे मुहूर्ते प्रबुध्वतु' के अनुसार ब्रह्म मुहूर्त में उठकर, साधना करनी चाहिये, इसे अमृत-बेला कहा गया है। प्रातः ३ बजे से ७ बजे तक का समय ब्रह्म-मुहूर्त माना गया है। साधक को बहुत नही बोलना चाहिये, मौन रहकर साधना की जा सकती है। स्वाद और बाद में साधक को नहीं पड़ना चाहिये अर्थात जीभ का स्वाद तथा वाद-विवाद से साधक दूर रहे। इसके अतिरिक्त व्यर्थ की शारीरिक चेष्टायें भी नहीं करनी चाहिये। व्यर्थ की चेष्टाओं से वृति चंचल होती है तथा दमन में नही आती। अतः साधक को मनसा, वाचा, कर्मणा में बहुत ही संयमित होना पड़ता है। विहार के अन्तर्गत साधक की सारी दिनचर्या है। अतः साधक को गुरुदेव के बताये अनुसार ही अपनी दिनचर्या तथा समस्त क्रियायें रखनी चाहिए।

****

हितोपदेश

धनवानिति हि मदो मे कि गतविभवो विषादमुपयामि ।
करनिहतकन्दुकसमाः पातोत्पाता मनुष्याणाम् ।।

मैं धनवान हूँ, जब मुझे अहंकार है तो क्या धन के नष्ट हो जाने पर विषाद करने लग जाऊँ? धन का होना-जाना तो मनुष्य के हाथ से ठुकराये हुए गेंद की तरह होता है। जो नीचे-ऊपर आता-जाता रहता है।

अभ्रच्छाया खलप्रीतिर्नवसस्यानि योषितः ।
किंचित्कालोपभोग्यानि यौवनानि धनानि च ।।

बादल की छाया, क्रूर मनुष्य का प्रेम, नया अन्न, स्त्री, यौवन और धन, ये कुछ ही समय के लिए उपभोग करने योग्य होते हैं।

वृत्यर्थं नातिचेष्टेत सा हि धात्रैव निर्मिता ।
गर्भादुपतिते जन्तौ मातुः प्रस्त्रवतः स्तना ।।

मनुष्य का कर्तव्य है कि वह जीविका के लिए विशेष चिन्तित न हो। क्योंकि उस (वृति) को तो विधाता ने पहले ही बना दिया है। देखो, बच्चे के गर्भ से बाहर आते ही माता के स्तनों से दूध बहने लग जाता है।

श्री रामलाल प्रभवे नमः

श्रीमद् भागवत में योग परिचर्चा

डा० विजय सिंह

अब तक श्रीमद् भागवत में जो कुछ महर्षियों द्वारा भगवान्, भगवान की सृष्टि एवं उनके लीला चरित्र का वर्णन किया गया उसको सार संक्षेप बारहवें अध्याय में सूत जी ने शौनकादि ऋषियों को स्मरण कराया है। हमें भी उसे यथावत् पढ़कर स्मृति का अंश बना लेना समीचीन होगा । अस्तु।

सूत जी कहते हैं- महान धर्म तथा भगवान कृष्ण को नमस्कार है। इस पुराण में परम गोपनीय ब्रह्मतत्व का वर्णन हुआ है। अतः ब्रह्म में ही इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय की प्रतीति होती है। इस भागवत् पुराण में परमतत्व का अनुभवात्मक ज्ञान और उसकी प्राप्ति के साधनों का स्पष्ट निर्देश है।

शौनक जी । प्रथम स्कन्ध में भक्तियोग का और उससे उत्पन्न वैराग्य का भी वर्णन किया गया है। परीक्षित की कथा और व्यास-नारद-संवाद के माध्यम से नारद चरित्र भी कहा गया है।

भक्तियोगः समाख्यातो वैराग्यं च तदाश्रयम् ।
पारीक्षितमुपाख्यानं नारदाख्यानमेव च । ५.१२.१२

प्रथम स्कन्ध मे ही, राजर्षि परीक्षित को शाप हो जाने पर किस प्रकार गंगातट पर अनशन-व्रतधारी राजा और ऋषि प्रवर शुकदेव जी का संवाद हुआ है, वर्णित है।

'योगधारणा' के द्वारा शरीर त्याग की विधि, ब्रह्मा और नारद संवाद अवतरों की संक्षिप्त चर्चा तथा महत्तत्व आदि के क्रम से प्राकृतिक सृष्टि की उत्पत्ति आदि विषयों का वर्णन दूसरे स्कन्ध में हुआ है।

योगधारणयोत्क्रान्तिः संवादो नारदाजयोः ।
अवतारानुगीतं च सर्गः प्राधानिकोऽग्रतः ।। ७.१२.१२

तीसरे स्कन्ध में विदुर जी के और उद्धव जी के, तदन्तर विदुर और मैत्रेय जी के संवाद का प्रसंग है। इसके बाद प्रलयकाल में परमात्मा किस प्रकार स्थित रहते हैं, यह बताया गया है। प्रलय-समुद्र से पृथ्वी का उद्धार करते समय वाराहभगवान के द्वारा हिरण्याक्ष का वध, देवता, पशु, पक्षी और मनुष्यों की सृष्टि एवं रुद्रों की उत्पत्ति का प्रसंग है। इसके बाद अर्धनारी-नर के स्वरूप का विवेचना है। जिससे मनु एवं शतरूपा का जन्म हुआ है। कर्दम प्रजापति का चरित्र, महात्मा का प्रसंग आता है।

चौथे स्कन्द में मरीज आदि नौ प्रजापतियों की उत्पत्ति, दक्षयज्ञ का विध्वन्स, राजर्षि ध्रुव एवं पृथु का चरित्र तथा प्राचीनबर्हि ओर नारद जी के संवाद का वर्णन है।

पाँचवे स्कन्ध में प्रियव्रत का उपाख्यान, नाभि, ऋषभ और भरत के चरित्र, द्वीप, वर्ष, समुद्र, पर्वत और नदियों का वर्णन तथा ज्योतिश्चक्र के विस्तार एवं पाताल तथा नरकों की स्थिति का वर्णन हुआ है।

छठे स्कन्ध मे-प्रचेताओं से दक्ष की उत्पत्ति, दक्ष पुत्रियों की सन्तान देवता, असुर, मनुष्य, पशु, पर्वत और पक्षियों का जन्म-कर्म का वर्णन किया गया है। वृत्तासुर की उत्पत्ति और उसकी परम गति विषय वर्णित है।

सातवें स्कन्ध में मुख्यतः दैत्यराज हिण्यकशिपु और हिरण्याक्ष के जन्म कर्म एवं महात्मा प्रह्लाद के उत्कृष्ठ चरित्र का निरूपण है।

आठवें स्कन्ध में मन्वन्तरों की कथा, गजेन्द्रमोक्ष, विभिन्न मन्वन्तरों में भगवान विष्णु के अवतार की कथा कही गयी है।

नवे स्कन्ध में मुख्यतः राजवंशों का वर्णन है। सूर्य वंश का वृतान्त भगवान राम के सर्वपापहारी चरित्र वर्णन तथा निमि का देह-त्याग और जनकों की उत्पत्ति कथा वर्णित है। परशुरामजी का क्षत्रिय संहार, चन्द्रवंशी नरपति पुरुरवा, ययाति, नहुष, दुष्यन्तनन्दन भरत, शन्तनु और उनके पुत्र भीष्म आदि की कथा कही गयी है। सबसे अन्त में ययाति के बड़े लड़के यदु का वंशविस्तार कहा गया है।

दशम स्कन्ध में यदुवंश में भगवान कृष्ण ने अवतार ग्रहण किया तथा उनके असुरों का संहार किया। उनकी लीलायें इतनी है कि कोई उनकार पार नहीं पा सकता। वसुदेव की पत्नी देवकी के गर्भ से उनका जन्म हुआ। गोकुल में नन्दबाबा के घर जाकर बढ़े। पूतना के प्राणों को दूध के साथ पीलिया। बचपन में छकड़े को उलट दिया। तृणावर्त, बकासुर एवं वत्सासुर को मार डाला। सपरिवार धेनुकासुर एवं वत्सासुर को मार डाला। आग से घिरे गोपों की रक्षा की। कालिया नाग का दमन किया। अजगर से नन्दाबाब को छुड़ाया। इसके बाद गोपियों ने भगवान कृष्ण को पतिरूप से प्राप्त करने के लिये व्रत किया और भगवान ने प्रसन्न होकर उन्हें अभिमत वर दिया। भगवान ने यज्ञपत्नियों पर कृपा की। गोवर्धन धारण किया और इन्द्र तथा कामधेनु ने आकर भगवान का किया। तदन्तर अक्रूर जी के साथ मथुरा में आये। कुवलयापीड़ हाथी मुष्टिक, चाणूर एवं कंस आदि का संहार किया। सान्दीपनि गुरू के यहाँ विद्याध्ययन करके उनके मृत पुत्रको लौटा लाये। जरासन्ध कई बार बड़ी सेनायें लेकर आया उनका संहार करके पृथ्वी का भार हलका किया। कालयवन को मुचुकुन्द से भस्म करा दिया। स्वर्ग से कल्प-वृक्ष एवं सुधर्मासमा ले आये। भगवान ने शत्रुओं के बड़े दल को युद्ध में पराजित कर रूक्मिणी को हर लाये। वाणासुर के साथ युद्ध के प्रसंग में महादेव जी पर जम्भास्त्र प्रयोग कर उन्हें असवधान कर वाणासुर की भुजायें काट डाली। प्राग्ज्योतिषपुर के स्वामी भौमासुर को मारकर सोलह हजार कन्यायें ग्रहण की। शिशुपाल, पौण्ड्रक, शाल्व दुष्ट दंतवक्र, शम्बासुर, द्विविद, पीठ, मुर, पंचजन आदि दैत्यों को भगवान ने मारा। भगवान के चक्र ने काशी को जला डाला तथा महाभारत के युद्ध में पाण्डवों को निमित्त बनाकर पृथ्वी का बहुत भार उतार दिया ।शौनकादि ऋषियों।

ग्यारवें स्कन्ध में ऋषियों के शाप के बहाने यदुवंश का संहार किया। मुख्यतः इस स्कन्ध में श्रीकृष्ण और उद्धव सम्वाद बड़ा ही अद्भुत एवं कल्याणकारी है। आत्मज्ञान और धर्म निर्णय का निरूपण हुआ है। अन्त में श्रीकृष्ण ने आत्मयोग के प्रभाव से किस प्रकार मर्त्य-लोक का परित्याग किया।

यत्रात्मविद्या ह्यखिला प्रोक्ता धर्मविनिर्णयः।
ततो मर्त्यपरित्याग आत्मयोगानुभावतः ।। ४२.१२.१२

बारहवें अध्याय में युगों के लक्षण और अकाल के मनुष्यों के आचरण व्यवहार का वर्णन किया गया है। कलियुग में मनुष्यों की विपरीत गति तथा चार प्रकार के प्रलय और तीन प्रकार की उत्पत्ति का वर्णन हुआ है। तदुपश्चात राजा परीक्षित का योगमय शरीर त्याग की बात कही गयी है। आगे वेदों की शाखा विभाजन तथा मार्कण्डेय जी की सुन्दर कथा और भगवान के अंग-उपाङ्गों तथा विश्वात्मा भगवान सूर्य के गणों का वर्णन है। इसके अध्ययन से साधक में तत्व ज्ञान को प्राप्त कराने वाली बुद्धि ऋतम्भरा

प्रज्ञा जाग्रत होती है। मैं व्यासनन्दन भगवान् शुकदेव जी के चरणों में नमस्कार बारम्बर करता हूँ।

स्वसुखनिभृत चेतास्तद्व्युदस्तान्यभावो-
ऽप्यजितरुचिरलीलाकृष्टसारस्तदीयम् ।
व्यतनुत कृपया यस्तत्त्वदीपं पुराणं

श्री रामलाल प्रभवे नमः

लीलाधारी की लीलायें

☆ *जगदीश राय बंसल 'अधम'* ☆

गतांक से आगे:-

प्रातः स्मरणीय अनन्त विभूषित योग सम्राट गुरू देव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपनी भव्य लेखनी द्वारा अवगत कराते रहे हैं कि मेरे गुरूदेव (हमारे आपके दादा गुरूदेव) गुरूओं के महा गुरू कल्याण घन सिद्धों के महासिद्ध प्रभु श्री रामलाल जी महाराज की दिव्य एवं चमत्कारी लीलाओं को जिन्हें मैंने स्वंय अपनी आँखों से देखा है, जनकल्यार्णाथ प्रकाशित करके संसार में योग प्रचार प्रसार करने का प्रयास है। इन अद्भुत लीलाओं का पठन-पाठन करने वाले जिज्ञासुओं की दिव्य कर्म योगी श्री प्रभु जी महाराज के श्री चरण कमलों में दृढ़ निष्ठा होगी और वे कल्याण को प्राप्त होंगे।

लीलाऐं-

श्री प्रभुजी का श्री मुलखराज से साक्षातकार एवं मान कृपाः-

सद्गुरू देव योग योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज उन दिनों अमृतसर में थे जब कॉग्रेस का आन्दोलन धूम-धाम से चल रहा था। कॉग्रेस का जुलूस, चौंक मल्ला सिंह की तरफ गीत गाते उमंग से जा रहा था। श्री प्रभुजी के शांत सागर के मन में एक तरंग आई और जुलूस देखने एक दुकान पर खड़े हो गए। उस जुलूस में श्री मुलखराज गीत गा रहे थे कि "हिन्द तख्तोताज असाँ नहीं छड़ना।' हम मर जायेंगे, जेल या स्वराज लेके रहेंगे......।" श्री मुलखराज जी सामने से निकले। उस समय उनकी उम्र २४ या २५ वर्ष की होगी। श्री प्रभुजी की दृष्टि उनके शरीर पर पड़ी। पूर्व संस्कारों को प्रत्यक्षीकरण हुआ। श्री प्रभुजी द्रवित-गद्गद कण्ठ होकर पूछ उठे, "बेटा, आजकल तुम कहाँ रहते हो?" तुम्हारा नाम क्या है.......? किन्तु श्री प्रभुजी की ये बातें मुलखराज जी को अच्छी नहीं लगी। श्री प्रभु जी उस समय सूती मिल के कपड़े पहने हुए थे।

श्री मुलखराज जी ने उत्तर दिया, "ये देश द्रोहियों के मिल के कपड़े पहने फूँक कर आओ व शुद्ध खद्दर के वस्त्र पहन कर आओ, तब मैं तुमसे बात करूँगा"। श्री मुलखराज से कड़े शब्द सुनकर अपने ममत्व के नाते मन में तो श्री प्रभुजी प्रसन्न ही रहे। किन्तु लौकिक मर्यादा से चुप रहकर घर लौट आए। चेहरे पर विभित्र दृश्य देखकर एक पुराने सत्संगी पंडित रामरत्न ने पूछ ही लिए, प्रभुजी ! यह आज क्या विलक्षण कृपा है? आप किसको स्मरण कर हंस रहे हैं? "श्री प्रभुजी हँस कर बोले-बेटा!आज हमें तुम्हारा भाई मिला है। वह जन्मों से बिछड़ा हमारा बालक है। वैसे उसके मिलने का संस्कार आठ वर्ष बाद का है। किन्तु हमने उसको देख लिया है तो उसके आठ वर्ष आठ दिन में निबट जाऐंगे, आठवें दिन अवश्यक हमारे पास आ जाएगा।"

सभी सत्सगियों में बड़ा उत्साह था। सब चाह रहे थे आज आठवाँ रोज है, कौन बालक है वह बड़भागी जिसको श्री प्रभुजी इतने दिन से याद कर रहे हैं। प्रातः काल लगभग नौ बजे का समय होगा, दर्शनार्थीयों का

आगमन शुरू हो चुका था। सभी लोग अपने-अपने मन की कामनाऐं श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में बतलाकर उपयोगी साधन सुन रहे थे। तभी एक २५ या २६ साल का नवयुवक अपनी जन्म-पत्री हाथ में ले कर आया। किन्तु आश्चर्य ये कि श्रीप्रभुजी की तरफ आगे बढ़ता बालक अद्वितीय था। श्री प्रभुजी के दर्शन पाते ही उसका उमंग भंग हो गया। वह धीरे से पीछे हटना चाहा, किन्तु श्री कृपानिधि जी ने इसको देख लिया था। श्री दीनानाथ जी बोल उठे, "बेटा तुम पीछे क्यों हट रहे हो। आओ हम तुम्हें भूत-भविष्य की बातें बतलायेंगे।" यह वही बालक था जो कॉग्रेस जुलूस में जाते हुए, श्री प्रभुजी से कुछ कड़े शब्द प्रयोग किए थे। किन्तु अपना जानकर श्री प्रभुजी ने अपने पास बुला लिया और उसकी जन्म-पत्री देखनी आरम्भ कर दी।

श्री प्रभुजी की महान कृपा

करूणानिधि श्री प्रभुजी ने जन्मपत्री के पृष्टों को उलट-पुलट देखा और फलादेश बतलाया, बेटा! "तुम्हारी जन्म-पत्री में लिखा है कि आज से ही तुम योगी बन जाओगे! आज से ही तुम्हें भूत-भविष्य का ज्ञान स्वतः होने लगेगा। तुम्हारी आँखें बन्द होंगी। किन्तु बन्द आँखे होते हुए भी तीन लोक के नजारे तुम यहीं बैठ देख सकोगे।" श्री प्रभुजी की कृपा वाणी सुन कर बालक की जिज्ञासा बढ़ती जा रही थी कि मैं आज ही भूत-भविष्य का ज्ञाता बन जाऊँगा, आज ही भगवान के दर्शन मिल जाऐंगे..........। सुनने वाले अन्य सतसंगीयों के मन में भी बड़ा भारी आश्चर्य था कि इस बालक को किस महान कृपा कावान देने वाले हैं हमारे श्री प्रभुजी.......। सभी के कौतूहल को बढ़ाते हुए श्री प्रभुजी ने बालक के कान में कुछ बतलाया और आज्ञा दीए"बेटा आँखें बन्द करके बैठ जाओ।" श्री प्रभुजी की आज्ञा पाकर साधना में बैठते ही ध्यानानुभूति जारी हो गई। भूत भविष्य के नजारे सामने आने लगे। उसेबरामदे में बैठा कर श्री प्रभुजी मकान में ताला बन्द करके ओकाड़ा मण्डी चले गए। श्री प्रभुजी ने इनको मूला-धार कमल में ऋद्धि-सिद्धी सहित गणपति जी के ध्यान करने की आज्ञा दी थी किन्तु श्री प्रभुजी के आकोड़ा से लौट कर आने तक श्री मुलखराज जी ने षट् चक्रों के सभी दर्शन पा लिए थे।

श्री प्रभुजी की अपार कृपा से पूर्व जन्म का ज्ञान

श्री गणपति जी ने श्री मुलखराज जी को पूर्व जन्म का दर्शन कराया। उन्होने ध्यान में देखा कि एक सुन्दर पहाड़ पर एक गाँव दिखाई दे रहा है। पहाड़ से पानी भर कर निकल रहा है। एक मकान है जिसमें तीन-चार कमरे हैं। आस-पास सुन्दरवृक्ष खड़े हैं। मकान में एक तेजस्वी ब्राह्मण, एक देवरूपा देवी दिखलाई दी। श्री गणपति जी ने बतलाया यही तुम्हारे माता-पिता हैं। श्री मुलखराज जी उस समय अपने इस जन्म की सुध-बुध भूल गए थे। जिस समय उनकी पूर्व-जन्म की स्मृति भंग हुई तो श्री गणपति जी से पूछा कि इस समय मेरे माता-पिता कहाँ हैं? श्री गणपति जी ने हाथ का इशारा करते हुए श्री प्रभुजी को पूर्व जन्म के पिता बतलाया। माताजी का देवलोक में दर्शन कराया। तेजोमयी माताजी ने देवलोक से ही इन्हें आर्शीवाद दिया। इन्हीं आठ दिनों के अन्दर श्री गणपति जी के दर्शन खुली और बन्द आँखों से होते रहे।

तुरीय स्थिति-आठ दिनों बाद जिस समय श्री प्रभुजी ओकाड़ा मण्डी से लौटकर आए तो श्री प्रभुजी ने मुस्कराते हुए कहा- "कहो बेटा, तुम्हारे प्रश्नों का जवाब तुम्हें मिल गया?" श्री मुलखराज जी ने दण्डवत् प्रमाण कर प्रार्थना की, "हे प्रभुजी, आपने अपने भटकते हुए बालक को पकड़ लिया है।" श्री प्रभुजी ने उन्हें अपने कण्ठ से लगा लिया और हार्द दीक्षा देकर एक दम तुरीय स्थिति प्रदान कर दी।

तुरीय स्थिति की दिव्य घटना

श्री मुलखराज जी इस मस्ती के नशे में झूमते-झामते चलते थे (गुरू नानक देव ने कहा है, "नाम खुमरी नानका चढ़ी रहे दिन रात) जिसमें उनको बिल्कुल बाह्य ज्ञान नहीं रहता था। आश्चर्य तो यह था कि वह अमृतसर के 'कर्मोंडयोढ़ी' व हाल बाजार बड़े-बड़े बाजारों से निकलते थे उस समय किसी मोटर, ताँगा रिक्शा व मनुष्यों से उनकी

भिड़न्त नहीं होती थी। ब्र० श्री गोपालानन्द जी, श्री प्रभुजी के साथ चल रहे थे। उन्होंने श्री प्रभुजी से पूछा कि ! भाई जी की आँखे बिल्कुल बन्द रखती हैं, ऐसी स्थिति में यह सब मोटर, ताँगों से बचकर कैसे निकल जाते ! इस स्थिति में क्या आनन्द है? श्री प्रभुजी ने बतलाया, बेटा इसके जो आनन्द है, उसको यही जानता है, यह आनन्द वाणी का विषय नहीं है। दुसरी बात इसको ले जाने वाले ड्राईवर सर्वशक्ति मान है, जो सभी का प्रेरक है। ऐसी स्थिति में पहुँचे हुए योगी को कोई किसी प्रकार का नुकसान नहीं पहुँचा सकता है।"

शिवोऽहम् शिवः केवलोऽहम्

अर्थात्–मैं शिव हूँ केवल-सदाशिव मैं ही हूँ। एक बार इसी तुरीय स्थिति में अमृतसर के गुरु बाजार से घण्टाघर की तरफ जा रहे थे। बहन द्रोपदी जी ने उनको देखा कि वह साक्षात शिव हैं.........। बहन जी उस समय श्री प्रभुजी के चरणार बिन्दों में नहीं आई थी। उन्होंने उनके शिव रूप में देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ और मन में सोचा इन महापुरूष को देखना चाहिए, कौन हैं, यह मनुष्य हैं? या स्वंय सदाशिव हैं ? श्री बहनजी श्री मुलखराज जी के पीछे चलती रही। लोगों ने बतलाया कि यह योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज के पूर्ण कृपा पात्र शिष्य हैं। श्री द्रोपदी जी अत्यन्त प्रभावित हुई व कृपानिधि प्रभुजी के चरण-कमलों में जाकर चरण शरण ग्रहण कर ली।

उड्डयन गति द्वारा पहाड़ से नीचे आना

एक बार श्री प्रभुजी श्री मुलखराज जी व श्री गोपालानन्द जी को साथ लेकर काँगड़े के पहाड़ पर गए। साथ में और भी बहुत से गृहस्थ शरीर थे। साथ वाले सत्संगी लोगों ने जब यह देखा कि ये दोनों पल-पल में मूर्छित हो जाते थे, पत्थर की तरह गिर जाते थे, तो लोगों ने श्री प्रभुजी से प्रार्थना की कि हे प्रभो, आप ले तो आए हैं किन्तु पहाड़ से नीचे कैसे उतारेंगे! श्री प्रभुजी हँसे और कहा कि भाई यह तुम लोगों से पहले जाएंगे और कोई नुकसान भी होगा नहीं। "लोगों ने कहा महाराज हम देखना चाहते ये पागलों जैसी स्थिति में कैसे उतर जाते हैं"? लोगों की भावनाओं को देख कर श्री प्रभुजी ने कहा कि हम तुम्हारे सामने नीचे उतार देते हैं.....। श्री प्रभुजी ने दोनों को खड़ा कर लिया और निर्दयभाव से गर्दन पकड़ करके पहाड़ की चोटी से नीचे को धकेल दिया।

सभी लोगों ने देखा कि श्री गोपालानन्द जी तो दर्दुरी वृत्ति से नीचे जा रहे हैं श्री मुलखराज जी-उड्डयन गति से नीचे जा रहे हैं। सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ और लोग धन्य-धन्य कहने लगे।

दिव्य दृष्टि का प्रादुर्भाण

श्री मुलखराज जी चारपाई पर रात्रि को लेटते समय श्री प्रभुजी के दिव्य अविनाशी स्वरूप में तल्लीन हो सोया करते थे और प्रातः उठते ही श्री प्रभुजी को प्रणाम कर आशीर्वाद प्राप्त करते थे। अतः हर समय उनको भी प्रभुजी के दिव्य दर्शन होते रहते थे। एक रात्री वह श्री प्रभुजी के चरण कमलों से लिपट कर योगनिद्रा लेने लगे। प्रातः लगभग साढे चार बजे ऐसा प्रतीत हुआ कि श्री प्रभुजी इनकी चारपाई से उठकर अन्तर्ध्यान हो गए। इसके बाद इनको ऐसा दृष्टिगोचर हुआ कि श्री प्रभुजी अमृतसर स्टेशन के प्लेटफार्म पर है। उस चरण के साथ लिपटते हुए इन्होंने सूक्ष्म शरीर से प्रार्थना की- "प्रभुजी ! बालक को भी साथ ले चलो।" आज्ञा पाकर इन्होंने शीघ्र कपड़े पहने और स्टेशन प्लेटफार्म न. दो पर पहुंचे तो देखा कि भक्त वत्सल श्री प्रभुजी एक चरण प्लेटफार्म पर और दूसरा चरण गाड़ी में रख कर खड़े बालक की ओर करूणामय मुस्कान से निहार रहे हैं।

श्री मुलखराज ने वहाँ पहुँचकर श्री चरण कमलों में गिरकर प्रणाम किया। श्री प्रभुजी ने कण्ठ से लगा आशीर्वाद दिया और अपने साथ लेकर गाड़ी में बैठ गए। श्री प्रभुजी ने इनकी मस्त हालत देखकर अपनी जंघा पर लिटा लिया। इनको समाधि में इस प्रकार दर्शन हुए कि स्वाधिष्ठान चक्र में श्री माता गायत्री जी ब्रह्मा जी के साथ विराजमान हैं। दोनों का चतुर्भुज दिव्य अलौकिक रूप के दर्शन किए। फिर ब्रह्मा जी पूछा-महाराज? आपके हाथ में ये पुस्तकें हैं, इनके नाम क्या हैं? श्री ब्रह्मा जी-ऋग्वेद, यजुर्वेद, समावेद और अर्थववेद।" महाराज कृपा करके इनका उच्चारण कीजिए। श्री ब्रह्माजी- "सुनिये," ब्रह्मा जी के चार मुखों से चार वेदों का उच्चारण मधुर अलौकिक ध्वनि से हुआ जिसका वर्णन पराबुद्धि विचारों की शक्ति से बाहर है इसके पश्चात श्री ब्रह्मा जी ने उसके सिर पर हस्त रख कर फरमाया "कुछ सुन रहे हो?" श्री मुलखराज जी हाँ, महाराज सुन तो रहा हूँ किन्तु इस श्रवण के आनन्द में मन आनन्द रूप होकर अपनी अवस्था को भूल गया था।" तब माता गायत्री जी ने कहा-"भक्त धन्य हो, धन्य हो।"

"ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः"

श्रद्धा और विश्वास

अन्तूराम यादव प्रयागराज

शेष पिछले माह का

<u>तीसरा दृष्टान्त–</u> वृन्दावन के मलूक पीठाधीश्वर जगतगुरू श्री राजेन्द्रदास जी महाराज को कौन नहीं जानता होगा। दूर दर्शन के माध्यम से उनका प्रवचन प्रायः प्रचारित होता रहता है। उन्होने अपने सामने घटित एक सच्ची घटना का वर्णन किया। यह घटना किसी अन्य युग की नहीं बल्कि इसी युग की और कुछ वर्ष पूर्व की हैं। उन्होने बताया कि वृन्दावन के एक पड़ोसी गॉव के दो भाई आये। उन्होने कहा कि महाराज जी! हम दोनों निः सन्तान हैं। बहुत प्रयास किया परन्तु संतान की प्राप्ति न हो सकी। महाराज जी ने कहा कि तुम दोनों पूरी श्रद्धा और विश्वास के साथ गौ सेवा करो, ईश्वर तुम्हारी मनकोमना अवश्य पूरी करेंगे। दोनों भाइयों ने कहा–महाराज! अपनी गौशाला से एक गाय दे दीजिए, हम लोग गाय को कहा ढूढ़गें। महाराज जी बहुत ही सरल और दयालु प्रकृति के हैं। उन्होनें कहा–जाओ गौशाला से अपनी मनपसंद की एक गाय ले लो। दोनों भाइयों ने गौशाला की सबसे सुन्दर गाय पसन्द की। महाराज जी ने कहा जो गाय तुम दोनों ने पसन्द किया है वह बॉझ है, बच्चा नहीं देती है। ऐसी गाय ले जाओ जो दूध भी दे और तुम लोग उसकी सेवा करो। परन्तु उन दोनों ने कहा–नहीं महाराज! हम लोग तो इसी गाय को ले जायेंगे। बड़ी श्रद्धा और विश्वास वे दोनों भाई गौ सेवा में लग गये। आश्चर्य यह हुआ कि कभी बच्चा न देने वाली गाय उनके यहॉ कुछ महीनों के बाद एक सुन्दर बछड़े को जन्म दिया। वे दोनों भाई उस गाय की पूरे तन–मन धन सेवा करते रहे, उन्हे पूरा विश्वास था कि महाराज जी की वाणी असत्य नहीं हो सकती, श्रद्धा और विश्वास का चमत्कार देखिए–लगभग डेढ़ वर्ष के बाद छोटे भाई को एक पुत्र की प्राप्ति हुई और कुछ समय बाद बड़े भाई के एक पुत्री की प्राप्ति हुई। दोनों भाई अपनी संतान को लेकर महाराज जी का दर्शन करने उनके आश्रम आये और आत्मविभोर होकर उनके चरणों में गिर गयें। महाराज जी ने कहा कि सन्तान प्राप्ति में मेरा कोई योगदान नहीं है, यह तुम दोनों भाइयों की श्रद्धा और विश्वास का फल है। महाराज जी ने उन दोनों की श्रद्धा और विश्वास की भूरि–भूरि प्रंसशा की।

चौथा दृष्टान्त– शबरी की आयु पन्द्रह सोलह वर्ष की थी। एक दिन उसने देखा कि उसके पिता पच्चीस–तीस बकरें घर लें आये। शबरी ने पूछा कि पिताजी ये बकरें क्या होगा। उसके पिता ने कहा–बेटी तुम्हारी शादी तय हो गई है। इस अवसर पर इन बकरों को बली दी जायेगी और मेहमानों को प्रसाद खिलाया जायेगा। शबरी ने विचार किया कि मेरे कारण इतने निरापराध जीवों की हत्या की जायेगी। शादी के बन्धन से बचने के लिए रात के अंधेरे में घर से भाग निकली। भागते भागते अन्ततो–गत्वा शबरी मंतग ऋषि के आश्रम में जा पहुँची। शबरी ने पूरा वृतान्त मतंग जी को सुनाया। मतंग ऋषि ने कहा–बेटी अब तुम निर्भय हो जाओं। मेरे आश्रम में आराम से रहो और ईश्वर का भजन करो। कुछ समय बाद मतंग ऋषि के शरीर छूटने का समय आ गया। मतंग जी ने शबरी को बुलाया और कहा बेटी मैं तो जा रहा लेकिन तुम इस आश्रम को छोड़कर कभी न जाना। एक दिन भगवान श्रीराम स्वंय आकर तुम्हें दर्शन देंगे और तुम्हारा कल्याण होगा।

मंतग ऋषि ने जिस समय शरीर छोड़ा उस समय अयोध्या में भगवान श्रीराम के अवतार को दूर–दूर तक कोई खबर नहीं थी। शबरी की उम्र उस समय अट्ठारवें वर्ष की थी शबरी की अपने गुरूदेव के प्रति पूर्ण श्रद्धा तो थी ही साथ ही साथ उनकी वाणी पर पूरा विश्वास भी था। मतंग ऋषि ने जिस दिन शरीर छोड़ा उसके दूसरे दिन रास्ते को साफ करती और उस पर फूल बिछाती इस आशा से भगवान श्रीराम इसी रास्ते से होकर मेरी कुटिया में आयेंगे कही उनके पैरों में कांटे न चुभ जाये। रास्ता साफ करते, फूल बिछाते वर्ष पर वर्ष बीतते गये लेकिन शबरी की श्रद्धा और गुरूदेव की वाणी पर तनिक भी विश्वास डगमग नहीं हुआ। उसे पूरा विश्वास था कि गुरूदेव ने कहा है तो भगवान श्रीराम अवश्य आयेंगे। रास्ता साफ करते भगवान श्रीराम की प्रतीक्षा में साठ वर्ष बीत गये। शबरी बूढ़ी हो गई। मंतग ऋषि के शरीर छोड़ो के साठ वर्ष बाद भगवान श्रीराम अपने वनवासकाल भ्रमण करते हुए शबरी की कुटिया में आयें और कृतार्थ किये। इस प्रकार श्रद्धा और विश्वास ने शबरी का नाम अमर कर दिया। शबरी मरण और जीवन के चक्कर से सदैव के लिए मुक्त हो गई।

पाँचवा दृष्टान्त– एक राजा की लड़की बहुत ही साध्वी प्रकृति थी। प्रतिदिन वह एक शिव मन्दिर में जाती, वहाँ भण्डारें का आयोजन करती। सन्तों को भोजन कराती

और उनकी सेवा करती थी। राजकुमारी हीरे, मोती, सोने, चाँदी के अनेक आभूषण धारण किये रहती थी। एक दिन एक चोर की नजर उसके आभूषणों पर पड़ी। वह चोर नकली साधु का भेष–धारण करके इस शिव मन्दिर में आया। राजकुमारी ने उसे भोजन प्रसाद देना चाहा तो उस नकली साधु ने भोजन लेने से इन्कार कर दिया। राजकुमारी ने कहा महाराज ऐसा क्यों! उस नकली साधु ने कहा तुमनें दीक्षा नहीं लिया हैं और ऐसे लोगों के हाथ का मैं भोजन नहीं करता। राजकुमारी ने सोचा कि यह तो बहुत पहुचे हुये महात्मा हैं। इनसे दीक्षा लेनी चाहिए ताकि ये महात्मा मेरे हाथ का भोजन ग्रहण कर सके इस नकली साधु ने राजकुमारी से कहा कि में यहाँ दीक्षा नहीं दे सकता इसके लिए तुम्हें एकान्त जंगल में चलना पड़ेगा। नकली साधु की निगाह तो उसके आभूषणों पर थी। जंगल में ले जाकर उसने राजकुमारी को रस्सी से एक पेड़ में बाध दिया राजकुमारी तो मन ही मन उसे अपना गुरू मान चुकी थी। उसने सोचा कि हो सकता है यह दीक्षा कि कोई प्रक्रिया है वह स्वंय पेड़ में बध गयी। उस नकली साधु ने कहा अब आँखें बन्द करो और जब तक में न कहूँ तब तक आँखे खोलना नहीं। कुछ देर बाद में आऊँगा तब मैं तुम्हे रस्सी खोलकर मुक्त करूगा। नकली साधु राजकुमारी के सारे आभूषण उतार लिये ओर नौ दो ग्यारह हो गया।

अपने गुरूदेव की वचनों पर पूरी श्रद्धा और विश्वास के साथ उस पेड़ से बंधी पड़ी रही। जब राजकुमारी घर वापस नहीं आयी तब सैनिक भेंजकर राजा ने राजकुमारी की तलाश करने को कहा। सैनिकों को मन्दिर से पता चला कि एक साधु राजकुमारी को लिवाकर कर जंगल की तरफ गया था। राजकुमारी के पास सैनिक पहुचें और बाद मैं राजा भी पहुचाँ। राजकुमारी ने कहा मेरे गुरूदेव बांध गये हैं। वही आकर खोलेगें तभी में घर चल सकतीं हूँ। उसको भूखे–प्यासे कई दिन बीत गये। उसकी हालत खराब होने लगी। भगवान विष्णु नारद जी को भेजा जाओं उसे समझाओं नारद जी आये और राजकुमारी से कहे कि बेटी! वह चोर है नकली साधु बनकर तुम्हारा सारा आभूषण चुरा ले गया।

राजकुमारी ने कहा–नारद जी, आप शान्त हो जाइए, मेरे गुरूदेव के प्रति एक भी अपशब्द न कहिए, आप यहाँ से जाइए। बाद में भगवान विष्णु भी आये परन्तु राजकुमारी को समझा नहीं पायें। बाद में राजा ने सेनिकों को आदेश दिया कि उस नकली साधू को ढूढँकर शीघ्रातिशीघ्र पेश किया जाय। नकली साधु पकड़कर लाया

गया। आकर कहा–बेटी! मैं आ गया हूँ। राजुकमारी को रस्सी खोलकर मुक्त किया। राजा ने राजकुमारी से पूछा–बेटी! इस नकली साधु को गुरू बनाकर तुम्हें क्या मिला? राजकुमारी ने उत्तर दिया पिताजी–मुझे क्या नहीं मिला। केवल पाँच रोज के लिए मैनें गुरू बनाया। पूरी श्रद्धा और विश्वास के साथ उनकी आज्ञा का पालन किया। इसका परिणाम क्या हुआ? महामुनि नारद का साक्षत्कार हुआ। भगवान विष्णु का साक्षात्कार हुआ। जन्म–जन्म तक ऋषि मुनि पर्वत की गुफाओं में तपस्या करते हैं परन्तु भगवान का साक्षात्कार नहीं हो पाता, मुझे केवल मात्र पाँच दिनों में ही हो गया। अब तनिक विचार करें–एक नकली गुरू पर पूर्ण श्रद्धा और विश्वास के साथ उनकी आज्ञा का पालन करने से भला हमें क्या नहीं मिल सकता।

<u>छठवां दृष्टान्त–</u> हम भली–भाँति जानते हैं कि एकलव्य को धनुष विद्या की शिक्षा देने से गुरू द्रोणाचार्य ने इन्कार कर दिया था लेकिन मन ही मन एकलव्य ने उनको अपना गुरू मान लिया था। उसने मिट्टी का द्रोणाचार्य बनाया और पूरी श्रद्धा और विश्वास के साथ उसी मिट्टी के पुतले को अपना गुरू मान लिया। एकलव्य की श्रद्धा और विश्वास के बल पर वह मुर्ति चेतन्य हो उठी और धनुष विद्या का पूरा ज्ञान एकलव्य को प्रदान कर दिया। श्रद्धा और विश्वास का यह एक जीता जागता अनूठा उदाहरण है।

<u>सातवां दृष्टान्त–</u> बाईबिल में एक कथा आती है। एक बार किसी ईसाई प्रदेश में भंयकर सूखा पढ़ गया। लोग भूखमरी की कगार पर आ गये। पदरी ने सबको इकट्ठा किया ओर कहाँ हम सब लोग चर्च चले और ईश्वर से प्रार्थना करे हो सकता है। ईश्वर हमारी प्रार्थना सुन ले और बरसात हो जाये अपनी पिता के साथ एक बच्ची भी चर्च जाने के लिए चल पड़ी। थोड़ी दूर जाने के बाद उस बच्ची ने अपने पिता से कहा पिताजी थोड़े रूके में अभी आई। वह दौड़ी–दौड़ी घर गई और एक छाता लेकर आई। लोग हसने लगे कि छाता का क्या होगा उस बच्ची ने कहा अरे! हम लोग ईश्वर से प्रार्थना करने चर्च चल रहे हैं। ईश्वर हमारी प्रर्थना जरूर सुनेगे और बरसात होगी तो क्या में भीगते हुये घर आऊगी। अगर बरसात नहीं हुई तो मैं समझूगीं कि ईश्वर झूठे है, वे अपने भक्तों की प्रार्थना नहीं सुनते। उस नादान बच्ची की इस बात पर लोग ठहाके लगाने लगे चर्च में सामूहिक प्रार्थना हुई जैसे ही लोग चर्च से बाहर आयें, उस बच्ची की श्रद्धा और आत्म विश्वास ने अपना प्रभाव दिखाया। एकाएक उमड़ गुमड़ कर बादल आये और घनघोर बरसात होने लगी और सब लोग भीगते हुए घर आये और वह बच्ची अपना छाता लगाकर खुशी–खुशी बिना भीगे घर आई। बाईबिल की यह कथा बताती है। कि श्रद्धा और दृढ़ विश्वास अवश्य फलित होता है।

शक्तिपात और गुरु-दीक्षा

☆ श्री कुन्दनलाल सचदेव ☆

मुक्ति या मोक्ष हम सब के जीवन का परम एवं अन्तिम लक्ष्य है। मोक्ष से भाव है "जीवात्मा-जो परमात्मा का ही अंश है, का अपने उस असली घर में वापिस पहुँचना जहाँ से उसे फिर इस संसार में बार-बार जन्म लेने से मुक्ति मिल जाए। अथवा आत्मा का परमात्मा से स्थाई मिलाप हो जाना। जहाँ स्थायी सुख, शान्ति और परम आनन्द की प्राप्ति होती है।" इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मनुष्यों को हजारों, लाखों जन्म लेने पड़ते हैं। सन्त, महात्मा, सिद्ध पुरूष हमें समझाते हैं कि मुक्ति प्राप्त करने के लिए हम सबके लिए योग मार्ग पर चलना अनिवार्य है।

योग क्या है? मनुष्य रूपी पिंजरे में अज्ञान के अन्धेरे में बन्दी बनकर फँसी हुई और अपने परमपिता से बिछड़ी जीवात्मा का (जो परमात्मा का ही अंश है) फिर परमात्मा से मिलाप हो जाना।

योग कई प्रकार का है जैसे-भक्तियोग कर्मयोग, राजयोग, हठयोग, शून्य या लय-योग इत्यादि। परन्तु इस सबमें सबसे सरल लक्ष्य की ओर शीघ्र ले जाने वाले योग को 'सिद्धयोग' का नाम दिया गया है। 'सिद्धयोग' में मुख्य भाव सिद्ध पुरूषों की कृपा की उपलब्धि है जिससे जीवात्मा और परमात्मा की एकता का होना सम्भव हो जाता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या हम स्वंय अपने परिश्रम से ही ऐसे मार्ग पर चल सकते हैं जिस पर शरीर नहीं अपितु आत्मा को यात्रा करनी है और जिसका हमें किंचित भी ज्ञान नहीं-विशेषतया उन बाधाओं का जो इस मार्ग में आती हैं और न ही यह ज्ञान है कि उनका निराकरण कैसे हो सकता है।

यदि हमें किसी ऐसे स्थान पर जाना पड़े जहाँ हम पहले कभी न गए हों तो हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि यात्रा आरम्भ करने से पूर्व किसी ऐसे व्यक्ति के पास जाएँ जिसने स्वयँ इस स्थान की यात्रा की हो। इसी भाँति साँसारिक जीवन में शिक्षा प्राप्ति के लिए किसी योग्य शिक्षक के पास जाना अति आवश्यक होता है। सिद्ध-योग मार्ग में यह अनिवार्य है कि हम ऐसे योग्य शिक्षक एवं पथ-प्रदर्शक की शरण ग्रहण करें- जिन्होंने स्वयँ इस पथ की यात्रा की हो जिन्हे आत्म-बोध हो चुका हो, जो इस भीतरी विद्या में पारंगत हों, जिनकी आत्मा का परमात्मा से मिलाप हो चुका हो और जो यह कह सकें कि ईश्वर का स्वरूप ऐसा है।

ऐसी महान ज्योति को हम चाहे सदगुरु या रूहानी मास्टर या मार्गदर्शक का नाम दें या सिद्ध पुरूष के पद से विभूषित करें, मतलब एक ही है।

ऐसे सिद्ध सतगुरु के पास आध्यामिक शक्ति का अथाह भण्डार होता है और यह हर समय उस शक्ति से ओत-प्रोत रहते हैं। यह अपने तप व साधना की अमूल्य सम्पत्ति को निःस्वार्थ भाव से शिष्यों पर न्योछावर करने

के लिए हर समय तत्पर रहते हैं। जहाँ कोई साधारण मनुष्य अपनी सम्पत्ति को कभी भी लुटाना नही चाहता, वहाँ यह सिद्ध सद्गुरु कितने महान हैं कि अपनी शक्ति रूपी सम्पत्ति को अपने तक ही सीमित नहीं रखते बल्कि उसे अपने शिष्यों में वितरित कर देते हैं, ताकि शिष्य भी उनकी ही भांति मोक्ष द्वार पर पहुँच जाएं।

शक्तिपात क्या है?

इस शक्ति-वितरण एवं संचारण की प्रक्रिया को ही शक्ति-पात कहा जाता हैं। शक्ति तो सत्गुरू और शिष्य दोनों में ही होती है, किन्तु अन्तर इतना है कि सत्गुरू की शक्ति जागृत है और शिष्य में वही शक्ति सुप्त अवस्था में रहती है। जैसे एक ज्योति दूसरी ज्योति का प्रज्ज्वलित करने की क्षमता रखती है वैसे ही सत्गुरू रूपी ज्योति सक्षम होने से शिष्य के हृदय में अध्यात्म की ज्योति को जगा देती है। जिस समय सद्गुरू इस सुप्त शक्ति को अपनी, शक्ति संचरण से जागृत करते हैं तो इस पावन क्रिया को गुरू दीक्षा समारोह कहा जाता है।

साधारणतः दीक्षा का अर्थ है "देना", परन्तु गुरू दीक्षा से भाव है "सद्गुरू द्वारा शिष्य के हृदय में आलौकिक और आध्यात्मिक शक्ति का संचार करना, जो केवल उनकी महान कृपा से शिष्य को मिल पाती है।"

गुरू-दीक्षा का मिलना कोई साधारण-अवसर नहीं समझना चाहिए, बल्कि यह एक ऐसा महान अवसर है जो अनेकों जन्मों के पुण्य कर्मों के संग्रह के फलस्वरूप मनुष्य के जीवन में सद्गुरू की अपार कृपा से मिलता है। भगत कबीर की सद्गुरू की महिमा हमें इस प्रकार समझाते है:-

"यह तन विष की बेलरी गुरू की अमृतकी खान,
शीष दिए जो गुरू मिले तो भी सस्ता जान"

गुरू दीक्षा के समय शिष्य सद्गुरू को अपना परमपिता परमेश्वर मानकर, हाथ जोड़ उनके चरण कमलों में अपना शीश नवा कर उनकी सेवा में श्रद्धापूर्वक फल-फूल आदि की भेंट पेश करता है और अपने सच्चे हृदय में उनकी पूजा और आरती उतारता है। सद्गुरू देव उस समय विशेष-कर ईश्वरीय रूप में विराजमान होते हैं। इस सम्बन्ध में यह महत्वपूर्ण बात याद रखनी चाहिए कि शिष्य सद्गुरू के मानस-देह की आरती और पूजा नहीं करता बल्कि सद्गुरू में जो ईश्वरीय शक्ति के अथाह समुद्र का प्रवाह बह रहा होता है उसकी पूजा और आरती करता है। देखने में तो सद्गुरू हमारी भाँति साधारण मनुष्य ही दिखाई देते हैं। अर्जुन भी श्रीकृष्ण को अपना मित्र समझता था, परन्तु भगवान श्रीकृष्ण ने उसे ज्ञान दिया कि मुझ में और तुझ में यही अन्तर है कि तुझे केवल इस जन्म का ही ज्ञान है और मुझे अपने सभी जन्मों का ज्ञान है। सद्गुरू हमारी तरह ही मित्रों में मित्रों जैसा, रिश्तेदारों और सम्बन्धियों जैसा ही व्यवहार करते दिखाई देते हैं, परन्तु वास्तव में वे नारायण स्वरूप हैं और सांसारिक बन्धनों से मुक्त हैं। वे कमल के फल की भाँति अपना आधा भाग संसार रूपी जाल से ऊपर रखते हैं और आधा भाग आत्मा रूपी जल के भीतर गहराई में छिपे बने रहते हैं।

सद्गुरू अपने प्रेम भरे हृदय से शिष्य के मस्तक पर हाथ रखकर बिजली जैसी शक्ति की तरंगे उसके रोम-रोम में संचरित कर देते हैं। इसके साथ साथ वे गुरू मंत्र का अमूल्य उपकार भी देकर उसे कृतार्थ कर देते

है। ऐसा जानिए, जैसे उन्होंने खाली गागर को पूर्णरूप से भर दिया हो।

इन दोनों क्रियाओं-शक्ति और गुरु-मंत्र से शिष्य की सुप्त ईश्वरीय शक्ति जिसे "कुण्डलिनी शक्ति" का नाम दिया गया है, का धीरे-धीरे जागरण होने लगती है। जिस प्रकार किसी गुफा में हजारों-लाखों वर्ष तक अंधेरा रहा हो और प्रकाश हो जाने पर अंधेरा सदा के लिए दूर हो जाता है, वैसे ही शिष्य अन्धकार से प्रकाश में प्रवेश कर जाता है। मन पर लगी जन्म-जन्मान्तरो की मैल के बादल फटने लगते हैं, पाप क्षीण होने लगते है। चिन्ताओं के ढेर जलकर चित के समान राख हो जाते हैं। शिष्य का मन झूठी माया से दूर हटने लगता है और उसका सम्बन्ध आत्मिक जगत से जुड़ने लगता है। वह जानने लगता है कि शरीर केवल आत्मा का एक वस्त्र है जो कि पुराना हो जाने पर त्यागना पड़ता है और उसके शरीर रूपी मन्दिर में विराजमान आत्मा ईश्वर का ही स्वरूप है, उसे मृत्यु का भय समाप्त हो जाता है।

वास्तव में शक्तिपात से शिष्य के हृदय मे वह कुछ होता है जो किसी और से नहीं होता। शक्तिपात का पावन प्रसाद प्राप्त करने के पश्चात् शिष्य हर समय सद्गुरू की छत्र-छाया में ही बने रहने लगता है। शिष्य सद्गुरू से चाहे कितनी दूरी पर क्यों न बैठा हो, सद्गुरू के वरद्हाथ की कृपा तथा दिव्य दृष्टि की किरण उस पर हर समय पड़ती ही रहती है। रिमोट कन्ट्रोल यन्त्र की भाँति सद्गुरू अपने तीसरे नेत्र से शिष्य को कन्ट्रोल मे बनाये रखते है, क्योंकि सिद्ध पुरुषों के पास दूर से देखने और दूरसे सुनने की अपार शक्ति होती है। सुगन्ध की भाँति उनकी शक्ति दिखाई नहीं देती, परन्तु उसे महसूस ही किया जा सकता है।

शक्तिपात करके सद्गुरू शिष्य को अपना लेता है और उसे इन दुःखों से भरपूर भव-सागर से पार मुक्ति द्वार पर पहुँचाने का का भार उठा लेते हैं। गुरू और शिष्य के हृदय की तारें एक साथ बजनी आरम्भ हो जाती है। ज्ञानेश्वरी गीता में वर्णन आता है कि भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन पर शक्तिपात किया तो उन्होंने अर्जुन को दायाँ हाथ फैलाकर अपने हृदय से लगा लिया। दोनों हृदय एक हो गए। जो कुछ एक में था वह दूसरे में डाल दिया गया। द्वैत भी बना रहा परन्तु अर्जुन को भगवान ने अपने जैसा बना लिया।

शक्तिपात होने के पश्चात् यों तो शिष्य जीव ही रहता है, परन्तु वह महेश्वर के समान हो जाता है। यही है सद्गुरू कृपा का विशेष भाव। इसीलिए तो कहा जाता है कि-

पिता से माता सौ गुना करती सुत सों प्यार ।
माता से हरि सौ गुना हरि से गुरू सौ बार ।।

कई बार देखने में आया है कि जिन शिष्यों ने कभी पहले कोई अभ्यास नहीं किया था वे सद्गुरू की अपार कृपा से यौगिक क्रियाओं को भली प्रकार करने लगते हैं और वे ध्यान, धारणा और समाधि में लीन हो जाते हैं, जैसे कि वे वर्षों से उनका अभ्यास करते आ रहें हों, परन्तु यह सब कुछ शिष्य के अपने पूर्व जन्मों के पुण्य कर्मों पर, उसकी सद्गुरू में श्रद्धा पर और सद्गुरू की अपार कृपापर ही निर्भर करता है। वैसे ही जैसे कि सूखी लकड़ी तो तुरन्त अग्नि पकड़ लेती है, परन्तु गीली लकड़ी काफी समय बाद अग्नि को पकड़ पाती है।

शक्तिपात मनुष्य जीवन में क्रान्ति का कार्य करता है। शक्तिपात के शिष्य इस जन्म में ही एक नया दूसरा जन्म पा लेता है। तभी तो इसको शिष्य के लिए "दोजन्मा" का नाम दिया गया है। यही सिद्धों का मार्ग है, क्योंकि यह पावन प्रसाद केवल उन्हीं के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। यह शक्तिपात का ही चमत्कार है कि श्री रामकृष्ण परमहंस अपने सद्गुरू श्री तोता-पुरीजी से शक्तिपात किए जाने के पश्चात् स्वयं भगवान बन गए। श्री विवेकानन्द जी ईश्वर की हस्ती तक को पहले अस्वीकार करते थे। श्रीराम, कृष्ण परमहंस द्वारा शक्तिपात का प्रसाद पाने पर महानुसिद्ध योगी बन गए।

बीसवीं शताब्दी में सिद्धों के महासिद्ध प्रभु श्री रामलाल जी महाराज द्वारा जो वर्ष १९८८ में अमृतसर में अवतरित हुए सिद्धयोग शक्तिपात का मानुप्रवाह चलाया गया जिसे अब योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज संवाई गुफा (जिला आगरा) वाले सारे भारत में भ्रमण कर उसी मिशन की पूर्ति कर रहे हैं।

अब हम सब का कर्तव्य है कि हम सद्गुरू देव के बताए हुए मार्ग पर चलें। हम उनमें पूर्ण श्रद्धा रखें। हम उनसे प्रार्थना करें कि वे हर समय हमें अपने चरण कमलों में स्थान दें।

ईश्वरीय शक्ति हमारे मार्गदर्शन के लिए गुरू रूप धारण कर हमारे मध्य में विराजमान है। उसके पहल के द्वार सबके लिए खुले हैं।

आइये, अब हम भी उनकी ओर कुछ पग चलें। वह तो सदैव हमारी प्रतीक्षा में रहते हैं, अपनी कृपा की बौछार के लिए। हमें तो केवल हृदय में जल विहीन मीन की तड़प, योगियों की नित्य चाहमयी भावना और ध्रुव जैसी अटल निष्ठा को बिठाना है। बाकी वह कृपामय, करूणा-करण, भक्त-वत्सल, लीलामय भगवान स्वंय देख लेंगे। चलो चलें उन प्रेम और करूणा के समुद्र की ओर। वे सदैव हमारा कल्याण करें। सदैव कल्याण करें।

स एव एकाग्रता

वही एकाग्रता है।

भाष्य-चित्तवृत्ति संस्कार की परिणति एकाग्रता है। चित्त विस्फोट से चित्त की जिस अत्कपलनीय शक्ति की ओर संकेत किया गया है, वह शक्ति चित्त की एकाग्रता से उत्पन्न होती है।

चित्त चंचल है और इसकी चंचलता की गति प्रकाश की गति से भी अधिक है। लेकिन चित्त की इस चंचलता में गति चाहे जितनी हो, परन्तु शक्ति कहाँ है। चंचल चित्त पहाड़ के शिखर से फिसलते हुए मनुष्य की तरह असहाय होता है।

चित्त के तीन रूप हैं- प्रकृत, विकृत और संस्कृत। प्रकृत रूप में चित्त चंचल होता है, विकृत रूप में उसकी चंचलता अधोगामिनी होती है और संस्कृत रूप में ऊर्ध्वगामिनी एवं एकाग्र। ऊर्ध्वगामी एकाग्र चित्त की इस विशेषता को ध्यान में रखने के कारण ही 'योगस्थः करू कर्माणि' की बात कही गयी है।

-प्रो० सिद्धेश्वर प्रसाद

योग के आधार

☆ श्री रामदेव झा 'विनोद' ☆

ब्रह्म रसरूप आनन्द स्वरूप है। इसके इस आनन्दमय स्वरूप से ही सृष्टि की रचना हुई है। अतः यह कहना सर्वथा उचित होगा कि सृष्टि की रचना का कारण अभाव नहीं प्रत्युत स्वभाव है। भगवान व्यास ने ब्रह्मसूत्र में कहा है कि "लोकवत्त लीला कैवल्यम्" अर्थात् यह सृष्टि ब्रह्म के लिए लीलामात्र है या इसे यों कहें कि यह सृष्टि ही आनन्दमय श्रीभगवान्‌की नित्य लीला है।

मनुष्य मात्र की इच्छा रहती है कि उसे सुख की प्राप्ति हो तथा वह काम्य सुख-दुःख से सर्वदा असंबद्ध हो। इस बात को सभी देश तथा सभी धर्म और सभी तरह के मानव समाज में एक रूप से स्वीकार किया गया है। हाँ, यब बात और है कि उस दुःख रहित एवं अत्यधिक सुख को पाने के जिए उसके साधन के विषय में भिन्न-भिन्न विचार, देश-काल, श्रद्धा तथा पृथक-पृथक आचार हैं। किन्तु संसार में जितने भी सुख के साधन हैं उन सबका अन्तर्भाव ज्ञान, कर्म और भक्ति रूप विविध साधनों में होता है। श्री व्यासजी ने भगवत् में कहा है-

योगस्त्रयो मया प्रोक्ता,
नृणां श्रेयोविधित्सया।
ज्ञान कर्म च भक्तिश्च,
नोपायोऽस्ति कुत्रचित्॥

इसका भावार्थ यह है कि मनुष्यों को परम सुख प्राप्त करने के साधन के रूप में ज्ञान, कर्म तथा भक्ति ये तीन ही है। इनके सिवा कोई अन्य उपाय कहीं नहीं है। इसमे कर्मपद से स्त्रोत, स्मार्त, तान्त्रिक कर्म विवक्षित हैं एवं आधुनिक प्रवृत्ति से परिपोषित भौतिक विज्ञान के चमत्कारों को प्राप्त कराने वाले साधनों को ग्रहण भी उचित प्रतीत होता है।

ज्ञानपद से जगत् के आदि कारणभूत तत्व सगुण-निर्गुण या शून्य आदि दर्शन-भेदों से विद्यमान सभी तत्वों के बोधक लिये जाते हैं तथा भक्तिपद से सभी प्रकार की परमेश्वर विषयिणी हृदय की द्रुतवित्ति ली जाती है।

ज्ञानयोग, कर्मयोग तथा भक्तियोग का एकमात्र प्रयोजन है-अखण्डानन्द दायक, जगत्कारण, नित्य, सदा अविनाशी, अविपरिणामशील ऐसे ब्रह्म या परमेश्वर अथवा भगवान में चित्त का लय कर देना। यथा गंगा-प्रवाह दिन-रात अखण्ड रूप से समुद्र में गिरता ही रहता है। यद्यपि ज्ञान-कर्म-भक्ति की श्रेष्ठता का निर्धारण योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वंय श्रीमद्भगवद्‌गीता में कर दिया है तथापि यहाँ उसका उल्लेख करना प्रासंगित लगता है। अर्जुन को अक्षर-ज्ञान का तथा भक्तियोग का बोध परमेश्वर ने करा दिया था। फिर भी अर्जुन के मन में यह शंका उपस्थित हुई कि भक्त और अक्षर निर्गुण ब्रह्म के उपासकों में श्रेष्ठ योगवित्तम् कौन है-

एवं सततयुक्ता ये,
भक्तास्त्वां पर्युं पासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं
तेषां के योगवित्तमा: ।।
-गीता १२/१

भगचवान श्री कृष्ण ने इसका उत्तर इस प्रकार दिया-

मय्यावेश्य मनो ये मां,
नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते,
मे युक्ततमा मता ।।
ये त्वक्षरमनिर्देश्य,
मव्यक्तं पर्युंपासते ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव,
सर्वभूतहिते रता: ।।
क्लेशोऽधिकतरस्तेषा-
मव्यक्ता सक्तचेतसाम् ।
ये तु सर्वाणि कर्माणि
मयि संन्यस्य मत्परा: ।।
तेषामहं समुद्धर्ता
मृत्युसंसार सागरात् ।
-गीता १२/२-७

अर्थात्- मुझमें श्रद्धा से चित्त लगाकर जो उपासना करते हैं वे युक्ततम हैं, श्रेष्ठ हैं, अक्षर अचिन्त्य, कूटस्थ, नित्य ब्रह्म की उपासना करने वाले भी मुझे प्राप्त होते हैं। परन्तु उनको अधिक क्लेश होता है क्योंकि अव्यक्त ब्रह्म की प्राप्ति बड़े कष्ट से होती है तथा जो मेरे भक्त है, मृत्यु और संसार-सागर

इस प्रकार से अक्षरज्ञान तथा भक्तियोग में जो अन्तर है वह स्पष्ट हो जाता है। इससे यह भी प्रत्यक्ष होता कि ब्रह्म विद्या से परम पुरूषार्थ मोक्ष की प्राप्ति के समान केवल भक्ति से भी परमेश्वर के परमप्रेम की प्राप्ति रूप परम पुरूषार्थ की सिद्धि होती है। इसे भगवान ने गीता में इस प्रकार कहा है-

तेषां सततयुक्तानां
भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं
येन मामुपयान्ति ते ।।
१०-१०

मद्भक्त एतद्विज्ञाय
मद्भावायोपपद्यते ।
१३-१८

भाव यह है कि सर्वदा एकाग्रचित्त से प्रेम-पूर्वक भजने वाले को मैं ज्ञान देता हूँ। जिससे वे मुझे प्राप्त होते हैं। मेरा भक्त इस परमेश्वर तत्व को जानता है और मुझे प्राप्त होता है। किन्तु इस स्थिति को पाने से पहले भक्त को चाहिये कि वह कर्मों से निर्विघ्न हो गये तथा संसार से विरक्त होकर इन्द्रियों का संग्राम करके अभ्यास द्वारा योगी पुरुष धीरे-धीरे अपने मन को निश्चल करे। इसके लिए योगेश्वर या योगेश्वरी की उपासना अत्यावश्यक है। श्रीमातृभक्ति युक्त भक्त को ही उपासना रहस्य कहना चाहिए। भक्तितन्त्र में कहा गया है कि 'सा परानुरक्तिशक्तिरीश्वर:' इस परिभाषा के अनुसार यह निर्णीण है कि चित्तवृत्ति विशेष ही भक्ति है-जैसे पातञ्जल योगदर्शन चित्तवृत्तिनिरोध को योग कहा गया है। यहां दोनों ही स्थितियों में अर्थात्-चित्तवृत्ति विशेष भक्ति

अथवा 'चित्तवृत्ति निरोध' के द्वारा स्थिरता शान्ति तथा समता की अपूर्व उपलब्धि होती है। किन्तु इसके लिए मन का अचचंल होना पहली शर्त है। इसके बिना योग का आधार कोई अन्यवृत्ति हो ही नहीं सकती। मन में एक सुस्थापित शान्ति तथा निश्चल नीरवता को प्राप्त करना अनिवार्य है। इसीसे सत्य चेतना की निमिति सम्भव है एवं अनुभूतियाँ भी स्थायी हो सकेंगी।

मन की अचंचलता का वास्तविक रहस्य यह है इससे सत्य की सत्ता का अनुभव होता है। सत् तथा असत् पदार्थों का निरीक्षण कर निर्णय लेने की योग्यता आ जाती है। अतः साधक चित्तवृत्ति विशेष भक्ति अथवा चित्त-वृत्ति निरोध के द्वारा त्याज्य का त्याग तथा सत्य का ग्रहण एवं धारण करने में सक्षम हो जाता है।

मन की निष्क्रिय होना तभी श्रेयस्कर है जब साधक केवल सत्य तथा दिव्यशक्ति के संस्पर्श के समक्ष निष्क्रिय भाव रखता हो। यदि निम्नगामिनी प्रवृत्ति एवं प्रकृति द्वारा निर्दिष्ट संकेतों तथा उसके प्रभाव के प्रति मन का निश्चेष्ट भाव बना रहा तो साधक अपनी साधना में क्रमित उन्नति नहीं कर सकता। परिणाम यह होगा कि प्रतिरोधक शक्तियों की श्रृखंला में बंधकर साधक योग के सत्पथ से दूर दूरतर बहुत पीछे छूट जाएगा। वह चाहे ज्ञानयोग हो, कर्मयोग हो या भक्तियोग।

निरन्तर मानसिक, प्राणिक तथा भौतिक प्रकृति की शक्तियाँ ही साधनापथ के बाधक तत्व हैं। इन सबका प्रतिरोध तभी किया जा सकता है जब जब मन तथा हृदय, सत्य सना-तन भगवान या मातृ-शक्ति की अभीप्सा में युक्त भक्त को सदा आनन्दमयी श्री माँ के समक्ष यही अभीप्सा करनी चाहिए कि उसके मन में अचंचलता तथा शान्ति सुप्रतिष्ठित हो एवं उसमें बाह्य-प्रकृति की पृष्ठिभूमि में विद्यमान दिव्य ज्योति तथा सनातन सत्य की ओर उन्मुख आन्तरिक सत्ता का सुबोध निरन्तर वर्तमान रहे।

प्रकृति को रूपान्तरित करने वाली शक्ति की ओर अपने आपको मुक्त करने के लिए उद्वेलित और अशान्त मन को धीर स्थिर, शान्त एवं प्रसन्न रखना होगा। इसका सर्व प्रमुख उपाय है अशान्त करने वाले विचारों कुत्सित अनुभवों, भावनाओं की ग्रन्थियों तथा कष्टप्रद वृत्तियों को मन पर सतत आक्रमण करते रहने का जो स्वभाव हो जाता है। उससे छुटकारा पाया जाए। इन आक्रात्मक प्रवृत्तियों से प्रकृति विक्षुब्ध एवं आच्छन्न हो जाती है। फलस्वरूप दिव्यशक्ति पूर्णतः क्रियाशील नहीं हो पाती इसलिए जब मन धीर शानत तथा प्रसन्न रहता है तभी दिव्यशक्ति निर्बाध रूप से अपना कार्य कर पाती है।

शास्त्र में कहा गया है क्षेत्रज्ञ और पर-माता की एकत्व भावना योग है। अथवा दुःख संख्योगों से विमुक्ति को योग कहते है। अथवा किन्हीं दो का जो अन्तराभाव ही उसे योग कहा जा सकता है। अथवा समाधि को योग कहते है। अथवा कर्मकुशलता ही योग है। इस प्रकार नाना विधि योग योग परि-भाषाओं के द्वारा जो परिभाषित है वह और कुछ नहीं शिवशक्ति सामरस्य की स्थिति विशेष है। वह परमानन्द है। अथवा विषय-संग है जो योग और भोग दोनों रूप में ज्ञात है। मन स्थिति तभी आती है जब मन धीर

में श्रीमातृभक्त महर्षि अरविन्द ने कहा है कि स्थिर मन में मनोमय सत्ता सारतत्व जब शान्त हो जाता है तो उसे कोई भी बाधक शक्ति विचिलित नहीं कर सकती। फलस्वरूप अन्तर्बाह्य सर्वत्र शान्ति का पूर्णतः अवतरण होने लगता है तथा उस शान्तावस्था में आत्म साक्षारता होता है। हाँ यह सम्भव कि इस अवस्था में भी तुच्छ अभ्यासगत संस्कारवश यन्त्रवत् चालित मन तुच्छ विचार परम्परा को जारी रखें। परन्तु साधक पूर्ण सावधान रहकर इसे शान्त कर सकता है तथा ध्यानावस्था में मन और प्राण की शान्ति एवं स्थिरता अच्छी तरह बनाए रख सकता है। इसके मूल में दृढ़ तथा शान्त शिव संकल्प हो तो इस कार्य को सर्वोत्तम रूप में सम्पन्न किया जा सकता है।

बाह्य प्रकृति से आन्तरपुरुष की पृथक्ता एवं मन की अचञ्चलता ही शान्त, धीर-स्थिर तथा आत्म प्रतिष्ठित होने में प्राय अनिवार्य रूप से सहायक होती है। जब तक हमारी सत्ता विचारों के आवर्त में भ्रमित अथवा प्राणमय विक्षुब्ध गतियों से प्रभावित होती है तब तक हम शांत एवं आत्म-प्रतिष्ठित नही हो सकते है। अतः इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि विचारों के भँवर तथा प्राणमय गतियों के विक्षोभ से अपने आपको पृथक् कर इन्हें अपने आप से पृथक् अनुभव करते रहें। हमारा वास्तविक व्यक्तित्व प्रकृति की क्रियाओं से अच्छान्न रहता है। अतएव अपने वास्तविक व्यक्तित्व के अन्वेषण के लिए तथा अपनी प्रकृति में उसे मूर्तिमान् करने के लिए, जिन दो चीजों की आवश्यकता है, उनमें पहली है हृदय के पीछे रहने वाले अंतरात्मा के विषय में सचेतन होना तथा

किसी एक की उपस्थति की जगह उसी एकमात्र उपस्थति की अनुभूमि को कभी भी अस्वीकार करने अथवा इसके स्वरूप के विषय में सनदेह करने की भूल कदापि नहीं करनी चाहिये। यदि ऐसी स्थिति कदाचित आ जाय तो उसे चंचल एवं अस्थिर अशांत मन का परिणाम समझना चाहिए।

मन और अन्तरात्मा पर शांतिमय तथा ज्योतिर्मय परम सत्य का जब प्रथम संस्पर्श होता है तो साधक को उस महान सत् पदार्थ का निरन्तर बोध होने लगता है। साधक को शांतिमय एवं ज्योतिर्मय परम सत्य के निरंतर बोध की अनुभूति की कोई परिभाषा करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह स्थिति या उपस्थिति स्वभावतः अनन्त रूप है। इसे परमेश्वर से प्राप्त करूणा समझकर कृतज्ञ भाव से स्वीकार करते हुए जिस शक्ति ने चेतना का स्पर्श किया है, उसके प्रति अपने आपको खोले रखना चाहिए तथा इस तरह उस शक्ति सत्ता को अपने अन्तर्गत जो कुछ विकसित करना है उसे विकसित करने देना चाहिए। एक क्षण में प्रकृति का रूपांतर करना सम्भव नहीं है। यह विभिन्न स्तरों को पार करता हुआ आगे बढ़ेगा। अतः इसके लिए दीर्घ समय अपेक्षित है। शांतिमय एवं ज्योतिर्मय जिस सत् पदार्थ का प्रथम बोध या अनुभूति साधक को होती है, वह नवीन चेतना में सम्भावित रूपांतर का आधारमात्र है। यह स्वभाविक अनुभूति इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि यह किसी मानसिक संकल्प या भावावेश का प्रतिफल नहीं है, यह इन सबसे परे सत्यसे ही प्राप्त होती है।

साधक को अपने संकल्प-विकल्प, भावावेगों और विचारों को संयमित करने ही से ही साधना पथ पर आते जाते सन्देहों से मुक्ति

तथा योग के लिए शरीर को गतिविधि को संयमित करने में अनिवार्य सहायता मिल सकती है। यद्यपि यह बड़ा ही कठिन कार्य है क्योंकि सामान्यतः मनुष्य मुख्य रूप से मनोमय प्रकृति का जीव होता है। इसलिए अपने मन की वृत्तियों के साथ उसका तादात्म्य सम्बन्ध हो जाता है। बलात् उनसे स्वंय को पृथक् नहीं कर सकता तथा आवर्त-विवर्त्तों के चक्र से मुक्त होना उसके लिए असम्भव- सा हो जाता है।

यौगिक क्रियाओं से अल्पाधिक रूप में साधक के लिए अपनी शारीरिक क्रियाओं को संयमित करने में अपेक्षाकृत अधिक आसानी होती है। भावावेगों, वासनाओं तथा विचारों पर मानसिक संयम स्थापित करना उतना सरल नहीं हैं तथापि नियमित अभ्यास रूप संघर्ष के बाद ऐसा सम्भव हो जाता है। जिनका विकसित मानस है, जो सामान्य मनुष्य के सामान्य आचार-विचारों से ऊपर उठ चुके हैं, उनके लिए ऐसा कर पाना सहज है।

ऐसे लोगों को किसी न किसी रूप में किसी विशेष अवसर पर तथा किसी उद्देश्य विशेष के लिए अपने मन के दो भागों को पृथक्-पृथक् करना पड़ता है-जिनमें एक है सक्रिय, जो विचारों का उद्गम-स्थल है तथा दूसरा है प्रशांत तथा प्रभुता-सम्पन्न। दो भागों में विभक्त यह मन एक साथ साक्षी भी है तथा संकल्प-शक्ति वाला भी, जो विचारों को देखकर निर्णय करता है, वर्जित या स्वीकार करता है। उसमें संशोधन-परिवर्तन का आदेश देता है। मनोमय गृह का स्थाई तथा आत्म प्रभुता-सम्पन्न साम्राज्य का अधिकारी है।

योगी केवल मन के भीतर ही स्वामी नहीं होता, बल्कि मन में रहते हुए भी उससे बाहर निकल जाता है तथा उससे ऊपर अथवा उसके बिल्कुल पीछे अवस्थित होकर उससे मुक्त रहता है। ऐसी स्थिति में उसका वह मानस जो विचारों का उद्गम-स्थल रहा है-उसकी जगह वह देखता है कि सभी विचार मन से नहीं, बाहर से, विश्व-मानस अथवा विश्व प्रकृति से आते हैं। कदाचित उनका निर्दिष्ट एवं स्पष्ट रूप होता है, कदाचित् सर्वथा रूपहीन। ऐसी स्थिति में योगी के भीतर ही उसे अपना रूप प्राप्त हो जाता है।

मन का प्रधान कार्य है कि विचारवीचियों को स्वीकार करे अथवा त्याग दे। मनोमय पुरुष के अन्तर्गत समस्त सम्भावनायें असीमित तथा निर्बन्ध हैं। अतः स्वतन्त्र तथा अपने मनपर पूर्ण प्रभुत्व स्थापित करना किसी भी योगमुक्त साधक के लिए सर्वथा सम्भव है, यदि उसमें श्रद्धा सहित दृढ़-संकल्प विद्यमान हो।

आनन्दमय कोश

आनन्दमय कोश चेतना का वह स्तर है जिसमें उसे अपने वास्तविक स्वरूप की अनुभूति होती रहती है। अपने लोक का, अपने आधार का, अपने वैभव का, अपने अधिष्ठाता का भाव रहने से उसे प्रतीत होता है मैं पूर्णरूप से रूप से ही उत्पन्न हुआ है।

चैतन्य चरितावली का एक प्रसंग–

दिशाहीन नारियों का उद्धार

☆ श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी ☆

[विभूति-सम्पन्न महापुरुषों की वाणी मात्र से सद्‌मार्ग से हटकर और भ्रष्ट-मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति किस प्रकार अपना दिशा-बोध प्राप्त कर लेते हैं। महाप्रभु चैतन्य, के चारु-चरित्र का यह कथा-प्रसंग पाठकों को हितकर होगा। इस दृष्टि से यह प्रसंग हम यहाँ दे रहे हैं। इसके लेखक हैं परम भागवत भक्त और आज के युग के महासन्त तथा हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध लेखक श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी ।

--सं० सम्पादक]

रे कन्दर्प करं कदर्थयसि किं कोदण्डटङ्कारितैः,
रेरेकोकिल कोमलैः कलरवैः किं त्वं वृथा जल्पसि ।
मुग्धे स्निग्धविदग्धमुग्धमधुरैर्लोलैः कटाक्षैरलं,
चेतश्चुम्बितचन्द्रचूडचरणध्यानामृतं वर्तते ।।

(भतृ० वै० श० ६८)

जो कामदेव ! धनुष्य टङ्कारों से तू अपने हाथों को क्यों कष्ट दे रहा है? अरी कोयल ! तू भी अपने कोमल कलनादों से क्यों व्यर्थ मचा रही है? ऐ भोली-भाली रमणी ! तुम्हारे इन स्नेहयुक्त, चतुर, मोहन, मधुर एवं चंचल कटाक्षों से भी अब कुछ नहीं हो सकता। मेरे चित्त ने तो चन्द्रचूड के चरणों का ध्यानरूपी अमृत-पान कर लिया है।

जिसने प्रेमासव का पान कर लिया है, जो उसकी मस्ती में संसार के सभी पदार्थों को भूला हुआ है, उसके सामने ये संसार के सभी सुन्दर, सुखद और चमकीले पदार्थ तुच्छ हैं। वह उन पदार्थों की ओर दृष्टि तक नहीं डालता, जिनके लिए विषयी मनुष्य अपना सर्वस्व अर्पण करने के लिए तत्पर रहते है। जिस हृदय में कामादि के भी पूज-नीय प्रभु निवास करते हैं, उस हृदय में काम के लिए स्थान कहाँ? क्या रवि और रजनी एक स्थान पर रह सकते हैं? दीपक लेकर यदि आप अन्धकार को खोजने चलें तो उसका पता कहीं मिल सकता है? इसीलिए कहा है- "जहाँ है काम, वहाँ राम नहीं । और जहाँ राम है, वहाँ काम नहीं ।"

जो जाड़े से ठिठुरा हो उसके सम्मुख उसकी इच्छाके विरुद्ध भी धधकती हुई अग्नि पहुंच जाय तो उद्योग न करने पर भी उसका

जाड़ा छूट जायगा। सांवर की झील में कंकड़ी, पत्थर, हड्डी जो भी वस्तु गिर जायेगी वह नमक बन जायगी। प्रेमी से चाहे प्रेम से सम्बन्ध करो या ईर्ष्या-द्वेष से, कल्याण आपका अवश्य ही होगा। भूल से भी, लोहा पारस से छुआ दिया जाय तो उसके सुवर्ण होने में कोई सन्देह नहीं।

महाप्रभु जब दक्षिण के समस्त तीर्थों में भ्रमण करते-करते श्रीरङ्गम्आ रहे थे, तब रास्ते में अक्षयवट नामक तीर्थ में ठहरे। रास्ते में महाप्रभु का जीवन-निर्वाह भिक्षा पर ही होता था। किसी दिन भिक्षा मिल जाती थी, किसी दिन नहीं भी मिलती थी। कृष्णदास भट्टाचार्य प्रभु को भिक्षा बनाकर खिलाते थे। एक दिन भिक्षा का कहीं संयोग ही न लगा। तीर्थ में उपोषण का भी विधान है अतः उस दिन महाप्रभु ने कुछ भी नहीं लिया। एक निर्जल स्थान में शिवजी के समीप वे कीर्तनान्द में मग्न हुए-

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे ।।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण रक्षमाम् ।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण पाहि माम् ।।

इस महामन्त्र को जोर-जोर से उच्चारण कर रहे थे। रास्ते के श्रम से उनके श्रीमुख पर कुछ श्रमजन्य थकावट के चिह्न प्रतीत होते थे। उनके समस्त अंगों से एक प्रकार का तेज सा निकल रहा था। वे प्रेमानन्द में मग्न हुए उच्च स्वर से नाम संकीर्तन में मग्न थे। इतने में ही तीर्थराम नाम का एक बहुत बड़ा धनी वहां साहस आ पहुंचा। उसे अपने धन का गर्व था, युवावस्थान से उसे कर्तव्य-शून्य बना दिया था। योवन के मद में वह जीवन का ध्येय बना रखा था। सुन्दर से सुन्दर भोज्य पदार्थ को खाना और मनोरम से मनोरम ललनाओं के साथ समय बिताना यही उससे जीवन का परमसुख समझ लिया था। उसके साथ दो अत्यन्त सुन्दरी वेश्यायें थी। उनमें से एक का नाम सत्याबाई और दूसरी का नाम लक्ष्मीबाई था। उनके साथ हास-परिहास करते करते वह शिवालय के समीप आ पहुंचा। वहाँ उनसे अपनी कान्ति से दिशाओं को आलोकित करते हुए प्रेम। वतार श्रीचैतन्य को देखा। सुवर्ण के समान शरीर का रंग था, कमल के समान विकसित मुखारविन्द पर हठात् चित्त को अपनी ओर आकर्षित करने वाली दो बड़ी-बड़ी आँखें थीं। उसकी समझ में ही नहीं आया कि इतनी अतुलनीय रूप-राशि सु युक्त वह पुरुष यहाँ जंगल में अकेला एक कपड़ा ओढ़े क्यों पड़ा है? अपने सन्देह को मिटाने के लिए उसने धीरे से कहा-'कौन है।'

किन्तु महाप्रभु तो अपने कीर्तानान्द में मग्न थे, उन्हें किसी का क्या पता। वे पूर्ववत् जोरों से कीर्तन करते रहे। उनकी उत्सुकता और भी बढ़ी। उसने अबके जरा जोर से कहा-'आप कौन है और यहाँ एकान्त में क्यों पड़े हैं ?'

कृपामय श्रीचैतन्य ने अबके उसकी बात का उत्तर दिया-'भाई ! हम गृह-त्यागी संन्यासी हैं अपने प्यारे की तलाश में घर से निकले हैं। एकान्त ही हमारा आश्रय है, वैराग्य ही हमारा बंधु है, संकीर्तन ही हमारा एकमात्र कर्तवय है। इसीलिए हम यहाँ एकान्त में पड़े अपने प्यारे के नामों का उच्चारण कर रहे हैं। इतना कहकर महा-'

हो जाना चाहिये था और महाप्रभु को छोड़ कर वेश्याओं के साथ अन्यत्र चले जाना चाहिये था। किन्तु उसका तो प्रभु के द्वारा उद्धार होना था। उसके मन में ईर्ष्या का अंकुर उत्पन्न हुआ, वह सोचने लगा- 'यह भी कोई अजीब आदमी है। विधाता ने इसे इतना सौंदर्य दिया है, चढ़ती जवानी है, किसी उच्च कुल का प्रतीत होता है, फिर भी ऐसी वैराग्य की बातें कर रहा है। मालूम होता है इसे सत्याबाई और लक्ष्मीबाई के समान रूपलावण्ययुक्त कोई ललना नहीं मिली है। यदि एक बार भी इसने ऐसी अनुपम सुन्दरी के दर्शन किये होते तो यह संन्यास और वैराग्य सभी को भूल जाता।'

इन बातों को सोचते-सोचते वह अपनी दोनों संगितियों से बोला-'मालूम होता है, इसमें अभी संसार का सुख नहीं भोगा है, तभी वह ऐसी बढ़-बढ़कर बातें करता है।'

एक साथ ही दोनों जल्दी से बोल उठी- 'अजी, चलो भी किसकी बातें करने लगे। ये सब कामदेव दण्डित व्यक्ति हैं। वहाँ इन्होने ललनाओं के रूप की निन्दा की, वही कामदेव ने खप्पर हाथ में देकर इन्हें द्वार-द्वार का भिखारी बना दिया।'

तीर्थराम ने कहा-'नहीं, ऐसी बात नहीं। इसके चेहरे में आकर्षण है। कोई वैराग्यवान् साधू मालूम पड़ता है।'

इस पर उसकी बात का प्रतिवाद करती हुई लक्ष्मीबाई बोली-'हाँ, बिना मिलके तो सभी त्यागी-वैरागी हैं। खाने को न मिला तो कह दिया कि एकादशी व्रत है। 'नारि' मुई घर सम्पत्ति नासी। मूँड मुड़ाइ भये सन्यासी। मुझ-जैसी कोई इनके पल्ले पड़ जाये, तब हम देखेंगे कि कैसे त्यागी बने रहते है?'

तीर्थराम ने उन दोनों को उत्तेजना देते हुए कहा-'अच्छा, देखें तुम्हारी बात। यदि इसे अपने चंगुल में फँसा लो तो जो चाहो वह इनाम तुम्हें दें।'

उन दोनों को अपने रूप-लावण्य का गर्व था। वे मत्त सिंहनी की भाँति महाप्रभुजी की ओर चली। तीर्थराम पास ही छिपकर उनकी सब बातों को देखता रहा।

महाप्रभु एक करवट से लेटे हुए श्रीकृष्ण-कीर्तन कर रहे थे। गोविन्द और कृष्णदास कुछ दूरी पर थे। वे वेश्यायें वहाँ जाकर बैठ गयीं और अपने हाव-भाव-कटाक्षों से प्रभुकी अनन्यता को भंग करने की चेष्टा करने लगी, किन्तु प्रभु को पता भी नहीं कि कौन आया है, वे अपने नशे में चूर थे, उन्हें दीन-दुनिया किसी का भी होश नहीं था । उन्हें वहाँ बैठे जब बहुत देर हो गई तब लक्ष्मीबाई ने संपूर्ण साहस को इकट्ठा करके कहा-'साधुबाबा ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहती हूँ।'

पतित-पावन प्रभु तो इसके लिये तैयार ही बैठे थे। वे जल्दी से उठ बैठे और उन पर करुणा भरी विकार-नाशिनी दृष्टि डाल कर बड़े ही मधुर स्वर से प्रेम के साथ बोले- 'माताजी ! इस दीन-हीन सन्तान के लिये क्या आज्ञा है, मैं आपकी किस आज्ञा का पालन करूँ ?' उनकी दृष्टि में और उनके इन शब्दों में पता नहीं क्या जादू था ? वे दोनों अवाक् रह गयीं । काटो तो बदन में लहू नहीं ! उनकी वाणी बन्द हो गई, धैर्य छूट गया और पश्चात्ताप की अग्नि ने उनके हृदय में एक प्रकार की ज्वाला पैदा कर दी। वे आत्म-ग्लानि से अभिभूत होकर जल्दी से वहाँ से उठ खड़ी हुई। तीर्थराम के श्रवण-मात्र से ही उसका धैर्य टूट गया था। अब रहा-सहा धैर्य इस असम्भव घटना ने तोड़

जिससे प्रेमलाप करने की प्रार्थना करें और वह उन्हें माता कहकर सम्बोधन करे, यह कोई मनुष्य नहीं ईश्वर है। यह संसारी प्राणी का काम नहीं ये तो देवताओं के भी देवताओं का काम है। यह सोचते-सोचते वह महाप्रभु के बाद पाद-पद्मों में जाकर गिर पड़ा और बड़े ही जोर से चमत्कार कहने लगा- 'हा प्रभो ! मुझ पापी का भी उद्धार करो, प्रभो मुझे अपने चरण की शरण दो ।'

महाप्रभु ने उसे उठाकर छाती से लगाया। और प्रेम में विह्वल होकर जोर-जोर से नृत्य करते हुए संकीर्तन करने लगे। वे अविरल भाव से प्रेमाश्रु विमोचन करते हुए नृत्य करने लगे। भावावेश में उनके शरीर का वस्त्र जमीन पर गिर पड़ा, इससे उनके दीप्तिमान् श्री अङ्गों से तेज की किरणें फूट-फूटकर उस नीरव स्थान को आलोकित करने लगीं। वे वेश्यायें भी इस अद्भुत चमत्कार को देखकर भावावेश में अपने को भूल गयीं और भगवान नाम का कीर्तन करती हुई नृत्य करने लगीं।

तीर्थराम ने प्रभु के श्रीचरणों को जोर-से पकड लिया और बार-बार चिल्ला-चिल्ला कर वह कहने लगा- प्रभो ! मुझ पापी का भी किसी प्रकार उद्धार हो सकेगा? दया-मय ! मेरे पापों का प्रायश्चित किसी तरह हो सकता है क्या ?

पतितपावन प्रभुजी ने उसे उठाकर अपने गले से लगाया और कहा-"तीर्थराम ! तुम पापी नहीं, पुण्यात्मा हो, तुम्हारे श्रीअङ्ग के स्पर्श से मैं पावन हुआ । तुम भाग्यवान् हो, प्रभुजी के कृपापात्र हो, अपने मन से ग्लानि निकाल दो । करूणामय श्री हरि सबका भला करते हैं । जो उनकी शरण में पहुंच जाता है, उसके पाप रहते ही नहीं । रूई के ढ़ेर में जैसे अग्नि पड़ने से भस्म हो जाती है, उसी प्रकार वे भस्म हो जाते हैं ।"

सुनकर तीर्थराम को कुछ धैर्य हुआ। उसने अपने को महाप्रभुजी के श्रीचरणों में सर्वतो-भावेन समर्पित कर दिया । महाप्रभुजी ने उसे हरि-नाम-मन्त्र का उपदेश दिया और वह भी तिलक-कण्ठी धारण करके शुद्ध वैष्णव बन गया। दोनों वेश्याओं ने भी अपने पापों का प्रायश्चित्त किया और वे निरन्तर हरि-नाम स्मरण करने लगी ।

तीर्थराम की स्त्री का नाम कमलकुमारी देवी था, अपने पति की ऐसी दशा देखकर उसे परमानन्द हुआ। वह सती-साध्वी पति-व्रता अपने पति-चरणों का अनुगमन करने वाली थी। उसने अत्यन्त ही दीन-भाव से प्रभुजी के पाद-पद्मों में प्रणाम किया और गद्गद्कंठ से प्रार्थना की-'प्रभो ! इस पापिनी का उद्धार कीजिये। मुझे भी अपने चरणों का शरण प्रदान कीजिये, जिससे संसार-सागर से मैं भी पति के चरणों का अनुगमन कर सकूँ।'

महाप्रभु की आज्ञा से तीर्थराम ने अपनी पत्नी का हरि-नाम-मंत्र का उपदेश दिया। वह भी अपना सारा धन कंगालो को बाँटकर तीर्थकार के साथ हरि-नाम-संकीर्तन करने लगी ।

महाप्रभु सात दिन तक बटेश्वर में ठहरे। वहां रहकर वे धनीराम को उपदेश देते थे। प्रभुजी ने उससे कहा-बहुत ग्रंथों के माया-जाल में मत पड़ना, भगवान केवल विश्वास से ही प्राप्त हो सकते हैं। सम्पूर्ण जगत के वैभव को तृण-समान समझना और निरंतर भगव-न्नाम संकीर्तन में लगे रहना, यही वेद-शास्त्रों का सार है। इस प्रकार तीर्थराम और उन दो सुन्दरी वेश्याओं को प्रेमदान करके महाप्रभु श्रीरंगम् चले गये थे और श्रीरंगम में ही चातुर्मास्य किया। जब वर्षा समाप्त हो गई, तब प्रभुने श्रीरंगम् से आगे चलने का विचार किया

दैनिक जीवन में- निष्काम-कर्मयोग

☆ डॉ0 श्री रमेशचन्द्र जिन्दन ☆

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा,
फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते,
सङ्गोऽस्त्वकर्माणि ।।
योगस्थ: कुरु कर्माणि,
सङ्गत्यक्त्वा धनंजय ।
सिद्ध्यसिद्ध्यो: समो भूत्वा,
समत्वं योग उच्यते ।।
(गीता२/४७-४८)

'तेरा कर्म करने मात्र में अधिकार है, फल तेरे अधिकार में कभी नहीं । अतः तू फल की कामना न कर, पर कर्म को छोड़ने की भी इच्छा न कर। आसक्ति को त्याग कर तथा सफलता या असफलता में समभाव रखकर योग में स्थित होकर कर्मो को कर । यह समत्व या समता का भाव ही योग कहलाता है।

श्रीमद्भागवद्गीता संसार के धर्म-ग्रन्थों में अन्यतम है । अनेक भाषाओं में इसके असंख्य अनुवाद और टीकाएँ भी हो चुकी है। लाखों व्यक्ति प्रेम और श्रद्धा से गीता का पाठ करते हैं। पर दैनिक जीवन में इसके उपदेशों का पालन बहुत कम लोग कर पाते हैं। अधिकतर व्यक्ति समझते हैं कि भगवान का यह आदेश केवल मोक्ष-प्राप्ति या परलोक सुधारने के लिए है। साधारण मनुष्यों के लिए व्यावहारिक जीवन में उपदेशों का पालन सम्भव नहीं है, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं हैं। युद्ध-भूमि में मोह-ग्रस्त हुए अर्जुन गीता का ज्ञान प्राप्त करने के बाद युद्ध भी किया। उसमें विजय पायी तथा जीवनपर्यन्त अपने कर्तव्यों का सुलतापूर्वक पालन करते रहे। इसी प्रकार ऊपर लिखे भगवान् के आदेश का पालन हम सभी के लिए सम्भव है न केवल सम्भव है, वरन् जीवन में सुख, शान्ति एवं सफलता प्राप्त करने का अचूक मन्त्र भी है। हम यहाँ गीता के निष्काम-कर्मयोग पर और दैनिक जीवन में उसकी उपयोगिता पर विचार करेंगे और देखेंगे कि किस प्रकार हर व्यक्ति इसका पालन कर लाभ उठा सकता है।

निष्काम और आसक्ति-रहित कर्म का यह सिद्धान्त जीवन की इस सच्चाई और आधारित कि इस संसार में सुख और दुःख सफलता और असफलता हमारे अधिकार में नहीं हैं। हम कितना भी चाहें, पर इच्छानुसार भोग-प्राप्ति सम्भव नहीं है। मिल भी जाय तो तृप्ति नहीं हो सकती। मनोवांछित भोगों की प्राप्ति के लिए हम भ्रष्टाचार, झूठ तथा तरह-तरह के पापों का सहारा लेते हैं, पर परिणाम क्या होता है ? या तो मनचाही वस्तु मिलती नहीं या मिल भी गई तो उससे अपेक्षित सुख नहीं मिलता। चिन्ता और विषाद बढ़ते है, क्रोध और ईर्ष्या से हम जलने लगते हैं। विभिन्न प्रकार के तनाव-जनित रोग जैसे-सिर दर्द, कब्ज, अपच

तथा भूख न लगना आदि घेर लेते हैं । फिर हम कहते है-जीवन बेकार है, कोई भी अपना नही है, सब मतलबी और बेईमान है संसार में सुख तो है ही नही। ऐसे संसार में रहकर या जीकर क्या किया जा सकता है। संसार जंजाल है दुःख का सागर है।

तब हम क्या कर सकते हैं ? क्या संसार को छोड़े बिना सुख ओर शांति नहीं मिल सकती ? क्या घरबार छोड़ना ही सच्चा संन्यास है ? या फिर कोई और भी रास्ता है। हाँ है और वह है निष्काम कर्मयोग का। गीता में भगवान् ने स्पष्ट कहा है कि कर्मों का स्वरूप से त्याग करना आवश्यक नही है, बल्कि कर्म करना ही आवश्यक है-
"माते सङ्गेऽस्त्वकर्मणि" तथा कर्म न करने से हमारे शरीर का भी निर्वाह न होगा-

"शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः।" इसलिए संसार में रहकर अपने कर्त्तव्य-कर्मो का पालन आवश्यक है, परन्तु "मा कर्मफल-हेतुभूः।" फल-प्राप्ति में आसक्ति न हो, क्योंकि फल-प्राप्ति इच्छानुसार हो-यह सम्भव नहीं है। मनोवांछित फल-प्राप्ति का आग्रह करके हम स्वंय को छोड़ने के सिवा कुछ नहीं कर पायेगें। जीवन में सुख दुःख तो आते ही रहेंगे, उन्हें सहना ही पड़ेगा । पर यदि इनको शांतिपूर्वक समभाव से प्रभु को विधान समझकर स्वीकार करेंगे तो हमारा अपना ही लाभ होगा ।

इस प्रकार भगवान् के आज्ञानुसार कर्त्तव्य कर्मों का पालन एवं प्रत्येक परिस्थिति में संतोष रखना ही, सच्चा रास्ता है। पर एक प्रश्न यह उठता है कि क्या बिना आसक्ति और कामना के सांसारिक कार्य ठीक प्रकार से हो सकते है? हाँ, थोड़ा विचार करने से आसक्ति तथा ध्यान होने से सफलता की सम्भावना और घट जाती है। हाथ में आये कार्य को हम ठीक प्रकार से करते नहीं, बल्कि किसी भी तरह से धन, भोग तथा मान की प्राप्ति में ध्यान लगा देते हैं। कार्य में भूलें अधिक होती हैं, भ्रष्ट और अनुचित साधन अपनाये जाते हैं। परिणामस्वरूप मन की शांति नष्ट हो जाती हैं। रात को नींद नहीं आती तथा चिन्ता, ईर्ष्या और क्रोध की आग में स्वंय जलते रहते है। इसके विपरीत यदि हमारा ध्यान फल-प्राप्ति पर न होकर कर्तव्य पालन पर होगा तो कार्य-कुशलता बढ़ेगी, बेईमानी का प्रश्न भी नहीं उठेगा, मन को शान्ति मिलेगी और विश्राम कीजिये, सफलता की सम्भावना भी अधिक ही होगी । वैसे मनोवांछित फल की प्राप्ति का आग्रह तो सदा पूरा नहीं होता है।

दूसरा प्रश्न यह किया जाता है कि फल की इच्छा न होने पर हमें कर्म करने की आवश्यक ही क्या है? और इस प्रकार हम कर्मों को छोड़कर आलसी बन जायेंगे । पर यह प्रश्न निरर्थक है। कर्म करना मनुष्य का स्वभाव है, अपने स्वभाववश कर्म तो हम करेंगे ही । हमारे शरीर और जीवन-निर्वाह सम्बन्धी कर्म तो स्वतः होते ही रहेंगे, पर आसक्ति न होने पर उनके लिए चिन्ता एवं दुःख न होना। बाकी दूसरे सांसारिक कार्य व कर्तव्य कर्मों का पालन भी हमें अपनी परिस्थिति, स्वभाव, आन्तरिक प्रेरणा या भगवान् के आदेशानुसार करना होगा । भली-भाँति किये हुए कर्त्तव्य-पालन का आनन्द भोग-प्राप्ति के आनन्द से कहीं अधिक होता है और यदि इन्हीं कार्यों को हम प्रभुजी की सेवा समझकर करें तो फिर कहना ही क्या।

इच्छा या आसक्ति को छोड़ना सबके लिए सम्भव है या भगवान् के उपदेश केवल कुछ बड़े-बड़े महात्माओं और सन्तों के लिए है ? सच है, केवल पुस्तक में पढ़ने या सुनने से तो इच्छा या आसक्ति का त्याग सम्भव नहीं, केवल अपने बल-बूते पर भी हम इस कर्मयोग की राह पर प्रगति नहीं कर सकेंगे। पग-पग पर राग-द्वेष, लोभ और ईर्ष्या रास्ता रोकेंगे पर इस पथ पर हमारी सहायता स्वंय भगवान करेंगे। आवश्यकता है शरणगति वं सच्चे हृदय से प्रार्थना करने की ।

हमें निरन्तर प्रभु से श्रद्धा, विश्वास एवं धैर्य के लिए प्रार्थना करनी होगी, परन्तु बाधा तो यह है कि हम प्रार्थना भी करते है तो केवल सांसारिक सुखो की प्राप्ति के लिए ही । ठीक है, यदि हम कामना या आसंक्ति को छोड़ नही पाते है सच्चे हृदय से इन्हें भगवान् के सामने रख दें। यह आग्रह न हो कि भगवान् हमारी अमुक इच्छा जरूर पूरी करें और अमुक प्रकार से करें, यह तो मानो प्रभु को आदेश देना होगा, न कि प्रार्थना, हमारा यह आग्रह क्योंकर पूरा होगा ? हमें तो अपनी इच्छा, कामना या संकट को पूर्ण रूप से प्रभु पर छोड़कर अपनी शक्ति पर कर्त्तव्य-पालन की चेष्टा करनी चाहिए। अपनी जिस मन कामना को लेकर हम प्रभु की शरण में जाएँ, फिर उसकी पूर्ति के लिए किसी प्रकार के अन्याय, अनाचार या गलत रास्ते को ना अपनायें । जब हम अपनी मन-कामना उस मंगलमय, सर्व समर्थ परमात्मा के आगे रख देंगे तो वे स्वंय उसे पूरा करेंगे। यदि हमारी किसी मनोकामना को पूरा करना उसके विधान में नहीं हैं या भगवान उसे पूरा नहीं करते तो फिर हम कितना भी सिर पटकें वह पूरी होने वाली नहीं। अतः पूर्ण रूप से भगवान् की शरण में जाने में है हमारा कल्याण है। प्रभु सर्व समर्थ है, परम कृपालु हैं। या तो वे हमारी इच्छा को पूर्ण कर देंगे या फिर वह कामना ही मिट जायेगी। पर हर प्रकार से हम अनासक्ति एवं समभाव की ओर बढ़ते जायेंगे, यह निश्चित है। गीता कहती है।

विषया विनिवर्तन्ते,

निराहारस्य देहिनः ।

रसवर्जं रसोऽप्यस्य,

परं दृष्ट्वा निवर्तते ।। (गीता२/५९)

केवल विषयों के त्याग से, आसति हे निवृत्ति नहीं हो सकती। पर स्थितप्रज्ञ पुरूष की आसक्ति भी परमात्मा का आक्षात्कार करके निवृत्त हो जाती है भाव यह है कि राग-द्वेष या आसक्ति का त्याग परमात्मा की शरण में जाने पर ही सम्भव है, न कि केवल दृढ़तापूर्वक संयम करने मात्र से।

अन्तिम बात यह है कि निष्काम कर्म-योग का कर्म पूर्णतया विरले लोग ही कर पाते है। इसके लिए जन्म-जन्म की साधना की आवश्यकता होती है। पर हमें इससे घबराना नहीं हैं। ऐसा नहीं है कि हम यदि पूर्णता तक न पहुँचे तो हमारी मेहनत बेकार होगी। नहीं, यदि हम आसक्ति एवं कामनाओं का त्याग न भी कर पायें, पर उनको अपने वश में रखें और थोड़ा-सा भी उन पर काबू पा सकें तो हमें बहुत लाभ होगा, यह भी परलोक में नहीं, यहीं इसी जन्म में और निश्चय ही। हमारे जीवन में सुख और शान्ति का प्रवेश होगा, चिन्ता-जनित अनेक रोगों से मुक्ति मिलेगी और धीरे-धीरे निष्काम कर्मयोग की राह में हम मागे बढ़ते जायेंगे। आवश्यकता है भगवान में विश्वास की तथा अपने को भगवान की शरण में छोडकर कर्त्तव्य कर्मों का पालन करने की। यदि हम फल का इच्छा छोड़ नही सकते तो भी कोई बात नहीं। फल की पूर्ति प्रभु के हाथों में छोड़कर अपना काम सच्चाईपूर्वक, लगन से व एकनिष्ठ होकर करने में हम एक ऐसे आनन्द का अनुभव करेंगे, जो भोगों की प्राप्ति में नहीं मिल सकता। एक बार शुरू करने पर जैसे-जैसे अभ्यास करेंगे आगे बढ़ते जायेंगे। गीता का साक्ष्य है-

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति,
प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य,
त्रायते महतो भयात् ।।
(गीता २/४०)

इस निष्काम कर्मयोग का थोड़ा भी साधन महान् भय से उद्धार कर देता है। इसमें आरम्भ का नाश नहीं है और न होई विघ्न-बाधा ही होती है। इस प्रकार यह निष्काम कर्मयोग सभी के लिए सम्भव है और सभी के लिए त्वरित लाभप्रद है। इसका थोड़ा-सा पालन भी हमें बहुत कुछ सुख और शांति प्रदान कर सकता है।

खचेरी मुद्रा

जिह्व को उलट कर कपाल के छिद्र में प्रवेश करने से और भृकुटियों के बीच में दृष्टि रखने से खचेरी मुद्रा होती है। जो खचेरी मुद्रा को जानता है, उसको रोग और मरण नहीं होता, निद्रा नहीं आती न भूख प्यास लगती है, न मूर्छा होती है। वह रोग से पीड़ित नहीं होता और न कर्मों से निपायमान होता है। जिसकी खचेरी मुद्रा है, वक काल से नहीं बंधता क्योंकि उसका चित्त आकाश में विचरता है और जिह्व आकाश में गमन करती है। इसलिए यह खचेरी मुद्रा सिद्धों से नमस्कार की गई है। जिसने खचेरी से तालू के छिद्र को ढक लिया है, कामिनी के आलिंगन करने से भी उसका वीर्य नहीं गिरता, जब तक देह में वीर्य स्थित है तब तक मृत्यु वहां है। जब तक मृत्यु वहाँ है। जब तक खचेरी मुद्रा बंधी रहती है तब तक वीर्य नहीं जाता

-योगी आत्माराम

बुद्ध के उपदेश

☆ श्री वियोगी हरि ☆

अमृत की खेती-

(१) मैं एक कृषक हूँ। मेरे पास श्रद्धा का बीज है। उस पर तपश्चर्या की वृष्टि होती है। प्रज्ञा मेरा हल है। ह्री (पाप करने में लज्जा की हरिस, मन की जोत और स्मृति की फाल से मैं अपना खेत (जीवन-क्षेत्र) जोतता हूँ।

सत्य ही मेरा खुरपा है। मेरा उत्साह ही मेरा बैल है और यह योग-क्षेम मेरा अधि-वाहन है। इस हल को मैं निरन्तर निर्वाण की दिशा में ही चलाया करता हूँ।

(२) मैं यही कृषि करता हूँ। इस कृषि से कृषक को अमृत फल मिलता है और वह समस्त दुःखों से मुक्त हो जाता है।

मैत्री-भावना

(१) न हम एक-दूसरे को धोखा दें न किसी जगह एक-दूसरे का अपमान करें और न खीज या द्वेष-बुद्धि से एक-दूसरे को दुःख देने की मन में इच्छा रखें।

(२) माता जिस प्रकार अपने स्नेह-सर्वस्व पुत्र को अपना जीवन खर्च करके भी पालती है, उसी प्रकार समस्त प्राणियों के प्रति हमें आसीम प्रेम रखना चाहिए।

(३) सर्व प्राणियों के प्रति हमें ऊपर, नीचे और चारों और असंबाध, अवैर और असपत्न मैत्री को असीम भावना बढ़ानी चाहिये।

(४) खड़े हों तब, चलते हों तब, बैठे हों तब या लेटे हों तब, जब तक नींद न आ जाय तब तक हमें इस मैत्री-भावना की स्मृति स्थिर रखनी चाहिए।

इसी अवस्था को इस लोक में "ब्राह्म जीवन" कहते हैं।

(५) जिस मनुष्य के मन से लोभ, द्वेष और मोह, ये तीन मनोवृत्तियाँ नष्ट हो गई हैं, वही चारों दिशाओं में प्राणिमात्र के प्रति मैत्रीभाव प्रसारित कर सकता है। अपने मैत्रीमय चित्त से चारों दिशाओं में बसने वाले समस्त प्राणियों पर वह प्रेम की रस-वर्षा करता है। करूणा, मुदिता और उपेक्षा की भावनाओं का उसे अनायास ही सुलाभ हो जाता है।

अक्रोध

(१) अक्रोध से क्रोध को जीते, बुराई को भलाई से जीते, कृपण को दान से जीते और झूठ बोलने वाले को सत्य से जीते।

(१) तुझे कोई गाली दे और गाली ही नहीं तेरे गाल पर कोई थप्पड़ मार दे या पत्थर या हथियार से तेरे शरीर पर कोई प्रहार करे, तो भी तेरे चित्त में विकार नहीं आना चाहिए। मेरे मुँह से गन्दे शब्द नहीं

निकलने चाहिए। तेरे मन में उस समय भी तेरे शत्रु के प्रति अनुकम्पा और मैत्री का भाव रहना चाहिए और किसी भी हालत में क्रोध नहीं आना चाहिए।

(३) मनुष्य तभी तक शांत और नम्र दीखता है, जब तक कोई उसके विरुद्ध अपशब्द नहीं कहता। पर जब अपशब्द या निंदा सुनने का प्रसंग आता है, तभी इस बात की परीक्षा हो सकती है कि वह वास्तव में शांत और नम्र है या नहीं ।

(४) यदि कोई टोकरी और कुदाली लेकर यह कहे कि 'इस तमाम पृथ्वी को मैं खोदकर फेंक दूँगा !' दूसरा मनुष्य लाख का रंग, हल्दी का रंग और मजीठ का रंग लेकर कहे कि 'इस समस्त आकाश को मैं रंग डालूँगा !' और तीसरा मनुष्य घास की पूली सुलगाकर कहे कि 'इस गंगा नदी को मैं भस्म कर डालूँगा !' तो उन मनुष्यों के प्रयत्नों का पृथ्वी, आकाश या गंगा नदी पर कोई असर पड़ने का नहीं । इसी प्रकार दूसरे लोगों के बोलने का तुम्हारे हृदय पर तनिक भी बुरा असर नही पड़ना चाहिए।

तृष्णा

(१) जिसकी तृष्णा नष्ट हो गई, राग से जो विमुक्त हो गया, जो शब्द और उसका अर्थ जानता है और जिसे अक्षरों के क्रम का ज्ञान है उसे 'महाप्राज्ञ' कहते हैं। निश्चय ही वह अन्तिम शरीर वाला है, अर्थात् वह निर्वाण प्राप्त कर लेगा ।

(२) संसार-सागर से पार जाने का प्रयत्न करने वाले मूर्ख मनुष्य को ये ऐहिक भोग नष्ट कर देते हैं। भोग की तृष्णा में फँसकर वह दुर्बुद्धि मनुष्य अपने-आपको ही हनन जन्म देने वाले मनुष्य मनुष्यत्व अथवा मनुष्येतर भाव को प्राप्त करके संसार-समुद्र को पार नहीं कर सकता।

चित्त

(१) इस शरीर को घड़े के समान टूट जाने वाला समझकर इस चित्त को गढ़ के समान सुदृढ़ करके प्रज्ञा के अस्त्र से विषयों के साथ युद्ध करे और जब विषयों को जीत ले, तो उनके ऊपर कड़ी नजर रखे, असावधानी न करे।

(२) जितना हित माता, पिता या दूसरे भाई-बन्धु कर सकते हैं, उससे कहीं अधिक हित मनुष्य का संयत चित्त करता है ।

(३) यदि मकान का छप्पर खराब है, तो उसकी दीवारें इत्यादि अरक्षित ही समझनी चाहिये, धीरे-धीरे वह मकान भूमिसात् ही होने को है।

विषयों का रस

(१) नेत्र, कान, नासिका, जिह्वा और त्वचा इन पाचों इन्द्रियों के रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श से मनुष्य को जो सुख प्राप्त होता है, उसी को मैं विषयों की जहरीली मिठाई कहता हूँ।

(२) इस विषाक्त विषय-भोग के लिए ही मनुष्य मन, वचन और काया से इस लोक में घोर से घोर दुराचार करता है और मृत्यु के बाद दुर्गति को प्राप्त होता है।

(३) विषयों की आसक्ति छोड़ देने से ही मनुष्य विषय-विमुक्त हो सकता है।

(४) जो ज्ञानवान् विषय-माधुर्य, विषय-दोष और विषय-मुक्ति को यथार्थ रीति से जानता है, वह स्वयं विषयों का त्याग कर देता है और दूसरों को भी विषयों के त्याग का उपदेश करता है।

ज्ञान

जिसे मैं ब्रह्म हूँ यह ज्ञान हो जाता है वह सर्वरूप बनता है। ऐसी विश्व रूप महान् आत्मा को दुनियाँ भर में सज्जनों द्वारा होने वाले समस्त सत्कर्म और दुष्टों की ओर से किये जाने वाले समस्त असत् एवं दुष्कर्म, सब मेरे ही है ऐसा जान पड़ना स्वाभाविक है। सारी दुनिया का कोई चोरी चोरी करे अथवा हत्यारा हत्या करे। शास्त्रीय भाषा में वह सब इस महात्मा द्वारा किये माने जायेंगे कितनी ही चोरिया या हत्यायें महात्मा के हाथ से होती हैं। फिर भी उनसे उसका बाल भी बाँका नहीं होता। यह भी उसी ज्ञान की महिमा है जिसके अन्तर्गत सारे संसार के दुष्कर्म इस महापुरूष के सिर मढ़े गये थे। इसलिए स्थित-प्रज्ञ की इस शास्त्रीय भाषा को व्यवहारिक भाषा समझना उचित न होगा।

• • •

SIDDHYOG | **POSTAL Regd No. OAG-19/24-26**

प्रेषण कार्यालय:

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक

सम्प्रति का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सर्राई (फुलमादपुर) आगरा (उ०प्र०)

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री / सुश्री ______________________

____

____

साधु पृष्टं भवद्भिश्च लोकानां हितकारकं:

भवन्तश्च तथा धन्या: पवित्रा कुलभूषणा:

सूतजी बोले ! लोकों के हित करने को आपने अच्छा प्रश्न किया आप धन्य हो,

पवित्र हो, कुल के भूषण हो ।